जीवन निहारें
जीवन निखारें

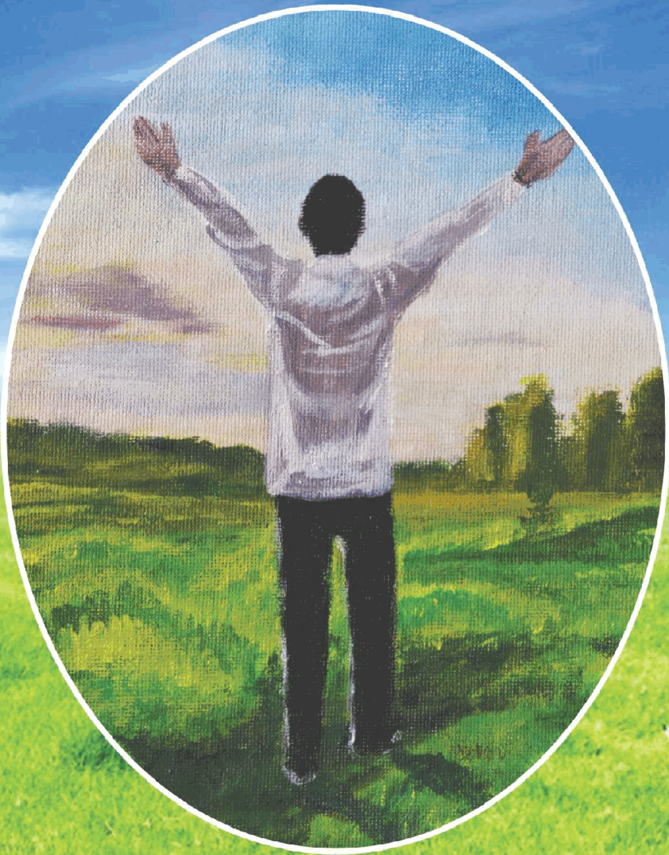

– राजकुमार, द्रोणगिरि

लेखक द्वारा प्रकाशित साहित्य

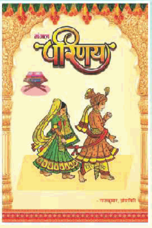

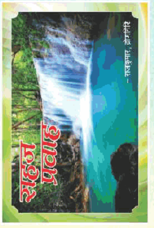

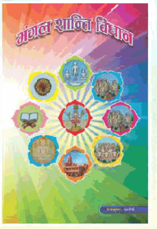

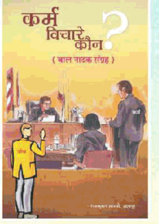

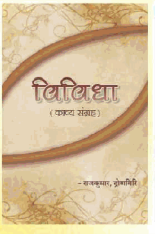

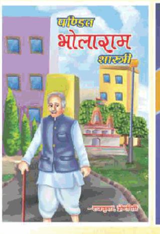

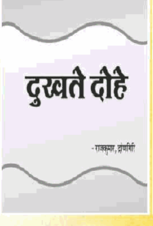

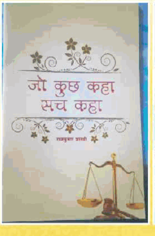

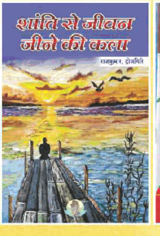

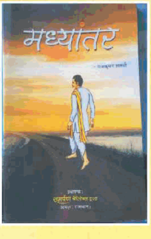

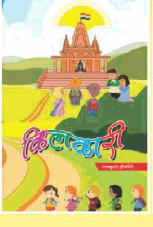

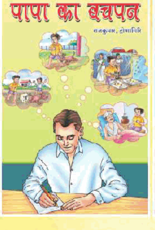

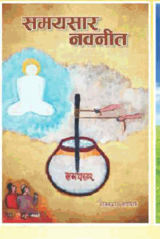

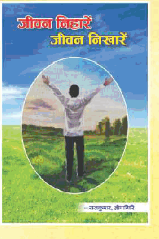

मुख्य पृष्ठ चित्रांकन : अगम-निष्ठा जैन, उदयपुर

जीवन निहारें-जीवन निखारें

– राजकुमार, द्रोणगिरि

''हम समाज/संस्था अथवा सरकारी सेवा में किसी उच्च पद पर हो सकते हैं, हमारे पास कुछ अधिकार हो सकते हैं अतः हम इस बात का सदैव ध्यान रखें – हमें वह पद या सामग्री योग्य कार्य करने के लिए ही प्राप्त हुई है। हमें 'परहिताय' निश्चित कार्य करने के लिए अवसर मिला है, यदि हम उस पद या सामग्री का उपयोग अपने परिवार या स्वयं के लिए करते हैं तो वह दोषपूर्ण आचरण है/निंदनीय है। हमें सरकारी वाहन/स्टेशनरी/फोन या अन्य सामग्री का उपयोग व्यक्तिगत कार्यों या व्यक्तिगत अधिकार/शक्ति दिखलाने के लिए नहीं करना चाहिए।''

– इसी पुस्तक से

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट का 31 वाँ पुष्प

जीवन निहारें –
जीवन निखारें

लेखक

राजकुमार, द्रोणगिरि

प्रकाशक

समर्पण

18, आदिनाथ कॉलोनी, केशवनगर, उदयपुर (राज.)

मो. 91 9414103492

प्रथम संस्करण : 1100 प्रतियाँ
(3 अगस्त 2020, वात्सल्यपर्व, रक्षाबंधन)

प्राप्ति स्थान : **शाश्वतधाम, उदयपुर (राज.)**
मो. 91-9414103492
: **दिनेश शास्त्री, जयपुर**
मो. 91-9928517346

साहित्य प्रकाशन हेतु सहयोग राशि : 30 रुपये

मुद्रक : देशना (दिनेश) कम्प्यूटर्स
मालवीया इण्डस्ट्रियल एरिया, जयपुर
मो. 9928517346

प्रस्तुत प्रकाशन में सहयोग करने वाले महानुभाव

1. गुप्तदान, रतलाम	5000/-
2. श्री राजेन्द्रकुमार बैनाड़ा, उदयपुर	2100/-
3. श्री रमेश-श्रुत वालावत	2100/-
4. श्री विद्या-सागर जैन, उदयपुर	2000/-
5. श्री नेमिचन्द चंपालाल भोरावत चेरीटेबल ट्रस्ट, उदयपुर	1100/-
6. पं. सिद्धार्थकुमार दोशी, रतलाम	1100/-
7. श्रीमती भागवती जैन ध.प.स्व.श्री प्रेमचन्द जैन, बड़ामलहरा	501/-
8. पण्डित अमित 'अरिहन्त' शास्त्री, मड़ावरा	250/-

आप अपनी सहयोग राशि **'समर्पण चेरीटेबल ट्रस्ट'** के नाम से, पंजाब नेशनल बैंक, पंचशील मार्ग, उदयपुर के खाता क्रमांक 0458000100404840 में जमा करा सकते हैं।

IFSC Code - PUNB 0045800

प्रकाशकीय

अभी तक **'समर्पण'** द्वारा प्रकाशित साहित्य पाठकों के बीच भरपूर पसन्द किया गया। एतदर्थ लेखकों/पाठकों/अर्थ सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद।

'समर्पण' के 31वें पुष्प के रूप में राजकुमार शास्त्री द्वारा लिखित **'जीवन निहारें – जीवन निखारें'** प्रस्तुत है। आशा है पाठक इस संकलन में भी साहित्य और अध्यात्म का आनन्द लेंगे।

'समर्पण' द्वारा प्रकाशित साहित्य के प्रकाशन सहयोग हेतु पाठकों द्वारा अधिकांश अर्थ सहयोग पहले ही प्राप्त हो जाता है, अतः अधिकतर साहित्य **'जो चाहो ले जाओ, जो चाहो दे जाओ'** के आधार पर जाता है। अनेक साधर्मी अधिक संख्या में साहित्य लेते हैं तो सहयोग राशि भी प्रदान करते हैं, वह राशि जिन प्रकाशनों में सहयोग कम आता है, उनके प्रकाशन में व्यय हो जाता है।

पाँच वर्ष की अल्पावधि में 30 पुष्प प्रकाशित होना एवं उनका समाप्त होना हमारे लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन्होंने अर्थ सहयोग प्रदान किया है, उन्हें धन्यवाद। पुस्तक के आकर्षक मुद्रण हेतु श्री दिनेश शास्त्री–देशना कम्प्यूटर्स जयपुर को भी साधुवाद देते हैं, जो कम समय में हमारी इच्छानुसार प्रकाशन में सहयोग प्रदान करते हैं।

आप पुस्तक पढ़कर जो भी आपके भाव हों, वह 9414103492 पर अवश्य ही सूचित करें। धन्यवाद।

निवेदक : **'समर्पण' चैरिटेबल ट्रस्ट, उदयपुर**

अंतर्मन

लगभग 25 वर्ष पूर्व जब मैं कोटा रहता था और वहाँ पर बाल-संस्कार शिविरों की श्रृंखला प्रारंभ हुई थी, तब डॉक्टर मानमलजी जैन कोटा ने व्यक्तित्व विकास के संबंध में सामूहिक कक्षाएँ संचालित करने के लिए एक पाठ्यक्रम बनाया था, जिसमें उन्होंने विचार, वाणी और कर्म इन तीन बिंदुओं के आधार से हम कैसे अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकते हैं? यह निर्दिष्ट किया था। यह जिनवाणी के सिद्धांतों-पंक्तियों को लेकर बहुत ही सुंदर पाठ्यक्रम था।

मैं और भाई अजित शास्त्री अलवर; शिविरों में जहाँ भी गए, वहाँ व्यक्तित्व विकास के संबंध में इसी विषय को आधार बनाकर कक्षाएँ जरूर लेते थे।

लगभग 1997-98 में हमने अजित ने इस पाठ्यक्रम को ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी 'आत्मन्' को भी भिंड में बताया था कि इस पाठ्यक्रम के आधार से हम कुछ प्रेरणास्पद कक्षाएँ संचालित करते हैं; उन्होंने इसकी अनुमोदना की और विस्तार करने का निर्देश भी दिया।

विगत 10-12 वर्ष से तो मैं बाल संस्कार शिविरों में सीधा जुड़ नहीं पा रहा हूँ, परंतु जब भी कोई ऐसा अवसर आता है तो इस विषयवस्तु का और विस्तार करते हुए कुछ लिखना चाहिए यह मन में अवश्य चलता रहता था। पिछले 2 वर्ष से लगभग मानस पक्का था कि 'समयसार नवनीत' और 'मध्यांतर के बाद' विषय पूर्ण करके इस विषय को मुझे लेना है।

इस लॉकडाउन के समय में अचानक ही समय अधिक मिल गया और इस अनुकूलता का लाभ लेते हुए 'समयसार नवनीत' और 'मध्यांतर के बाद' पुस्तक पूर्ण करके यह 'जीवन निहारें-जीवन निखारें' यह विषय पूर्ण किया है।

इसके पीछे अभिप्राय यही है कि हमारा किशोर/युवा वर्ग इस विषय को पढ़कर अपने जीवन में नैतिकता/सदाचार/उत्साह/कर्तव्य-निष्ठा/परिवार के प्रति समन्वय/कृतज्ञता/निर्लोभता इत्यादि गुणों को विकसित कर सकें।

इसमें जो कुछ भी लिखा गया है, उसमें मूल प्रेरक तो डॉक्टर मानमलजी द्वारा लिखित विषयवस्तु ही है (जो अभी मेरे मस्तिष्क में ही थी क्योंकि उसकी प्रतिलिपि मेरे पास अभी उपलब्ध नहीं है) शेष जो विस्तार किया गया है, वह आगम के आधार से ही आधुनिक भाषा-शैली में प्रस्तुत किया है। परिमार्जन तो भाई अजित की कलम से सदा की भाँति हुआ ही है।

प्रत्येक प्रकरण के प्रारंभ में हिन्दी-अंग्रेजी भाषा के जो प्रेरक वाक्य दिये गये हैं, वे मेरे वरिष्ठ सहपाठी पण्डित रविन्द्रकुमार शास्त्री नरसाई द्वारा समय-समय पर वाट्सएप पर प्रेषित संदेशों का संकलन है। एतदर्थ उन्हें हार्दिक धन्यवाद प्रेषित करता हूँ।

इस विषय को कहानियों/कविताओं के माध्यम से और लंबाया जा सकता है, परन्तु आदतन कि लगभग 100 पेज के आसपास की ही पुस्तक हो, जिसे पाठक आसानी से पढ़ सकें इतना ही लिखा है। वैसे इस प्रकार की प्रेरक पुस्तकें बाजार में पचासों हैं और बहुत सुंदर लिखी गई होंगी (मैंने पढ़ी नहीं हैं), परंतु जिनवाणी के आधार से हम उस बात को रख सकें यह इसका मुख्य उद्देश्य रहा है इसीलिए मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ भावनाएँ एवं अन्य विषय इसमें प्रस्तुत किए गए हैं।

आशा है आप लोगों को यह पुस्तक रुचिकर लगेगी। बस इसी विश्वास के साथ कि हम 'जीवन निहारें-जीवन निखारें' और अपना जीवन सफल करें।

- राजकुमार शास्त्री, शाश्वतधाम, उदयपुर

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट : एक परिचय

देव-धर्म-गुरु के चरणों में, तन-मन-धन सब अर्पण।
आतमहित व तत्त्वज्ञान को, है सर्वस्व समर्पण।।

ट्रस्ट का नाम – समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट	**स्थापना तिथि** – 20 सितम्बर 2014

ट्रस्ट मण्डल – संरक्षक : 1. श्री अजित जैन बड़ौदा, 2. श्री चन्द्रभान जैन घुवारा, 3. श्री कन्हैयालाल दलावत, 4. श्री ताराचन्द जैन उदयपुर, 5. श्री प्रकाशचन्द छाबड़ा सूरत, 6. श्री ललितकुमार किकावत लूणदा।

अध्यक्ष – राजकुमार शास्त्री उदयपुर, **उपाध्यक्ष** – अजितकुमार शास्त्री अलवर, **कोषाध्यक्ष** – रमेशचन्द वालावत उदयपुर, **मंत्री** – डॉ. ममता जैन उदयपुर, **सहमंत्री** – पीयूष शास्त्री जयपुर, **ट्रस्टी** – पण्डित अशोकुमार लुहाड़िया तीर्थधाम मंगलायतन अलीगढ़, ऋषभकुमार शास्त्री छिन्दवाड़ा, डॉ. महेश जैन भोपाल, रतनचन्द शास्त्री कोटा, इंजी. सुनील जैन छतरपुर, गणतंत्र 'ओजस्वी' आगरा।

ट्रस्ट की सामान्य रूपरेखा – उद्देश्य : 1. तत्त्वज्ञान, अहिंसा, शाकाहार, सदाचार का प्रचार करना। 2. सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध जागरुकता पैदा करना। 3. अनुपलब्ध, आवश्यक व नये लेखकों का श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशित करना। 4. सर्वोपयोगी पत्रिका प्रकाशित करना। 5. चिकित्सा व शिक्षा के क्षेत्र में प्राप्त सहयोग को वितरित करना।

कार्य पद्धति – 1. सबसे सहयोग-सबको सहयोग की भावना से साधर्मियों से प्राप्त सहयोग साहित्य/चिकित्सा/शिक्षा पर आवश्यकतानुसार वितरित करना। हमारा प्रयास होगा कि फण्ड बनाने की अपेक्षा प्रतिवर्ष प्राप्त सहयोग को उसी वर्ष वितरित कर दिया जाये। 2. व्यक्ति या संस्था के नाम के लिए नहीं, पर काम के लिए काम। 3. सर्वोपयोगी (अपनी समझ के अनुसार) योजना को सबके समक्ष रखना, यदि सहयोग प्राप्त हुआ हो तो उस योजना/कार्य को करना, नहीं तो..... ? 3. अच्छी बातें-सच्ची बातें (अर्थात् शाश्वत सत्य) ज्यादातर लोगों तक पहुँचे, ऐसा प्रयास करना।

गतिविधि – 1. साहित्य प्रकाशन, 2. **संस्कार सुधा** मासिक पत्रिका का प्रकाशन, 3. **सुखायतन – सुखार्थी साधर्मियों के लिए निःशुल्क/सशुल्क आवास-भोजन की व्यवस्था के साथ आध्यात्मिक पर्यावरण प्रदान करना,** 4. साधर्मी वात्सल्य योजना – साधर्मियों से स्वैच्छिक सहयोग लेकर योग्य साधर्मियों को शिक्षा/चिकित्सा सहयोग पहुँचाना।

निवेदक : **समर्पण चेरीटेबल ट्रस्ट, उदयपुर (राज.)**

तत्त्वविचार

दुर्लभ नर भव पाकर चेतन किया न तूने तत्त्व विचार।
तू है कौन ? कहाँ से आया ? कैसे चलता यह व्यापार ?
गोरा, काला, शरीर मिला क्यों ? क्यों पाया ऐसा परिवार।
कोई सुन्दर, कोई असुन्दर, दुःख–सुख का ना पारावार।।

सभी चाहते नित प्रति सुख हैं, पर सुख को वे नहीं पाते।
अजर–अमर मैं रहूँ सदा ही, पर इक क्षण में मर जाते।
मोही होकर जिनको पोषे, वे देते हैं साथ नहीं।
करे परिश्रम दिवस–निशि तू, पर लगता कुछ हाथ नहीं।।

यश चाहे पर अपयश मिलता, स्वास्थ चहे पर होवे रोग।
माल भरा है गोदामों में, कर नहीं पावे उनका भोग।
तेरे करने से कुछ हो तो, करले तू इक काला बाल।
बाल भी काला कर ना पाये, अब तो बदलो अपनी चाल।।

होते हुए काम को जानो, कुछ भी नहीं तेरे आधीन।
तेरे वश से कुछ नहीं होता, होता है सब कर्माधीन।
तू है चेतन, तन है अचेतन, है स्वतंत्र सारा परिवार।
हो स्वतंत्र परिणमन सभी का, कर लो चेतन तत्त्व विचार।।

उद्यम से ही कार्य सिद्ध हों, नहीं सोचने से होते।
कर पर जो कर धरकर बैठे, व्यर्थ समय हैं वे खोते।।
राजा हो या रंक जगत में, जो भी आलस करते हैं।
असफल होकर बैठे रहते, जीवनभर वे रोते हैं।।

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ
1.	जीवन का परिमार्जन	11
2.	आत्मनिरीक्षक बनें	14
3.	हमारे विचार – सुखी जीवन का आधार	19
4.	उन्नत विचार – सफलता का आधार	24
5.	छोड़ो हताशा/निराशा – रखो सफलता की आशा	42
6.	वाणी कर्म कृपाणी	51
7.	मन, वचन समान ही – कर्म भी महान हो	68
8.	व्यर्थ का पाप, है अनर्थकारी	79

अप्रभावित रहूँ

घुट-घुट कर जन जीवन जीते, हँस-हँसकर जीना चाहूँ।
आयु पूर्ण होने से पहले, कभी नहीं मरना चाहूँ।।
धन-हानि, पद-नाश हुआ तो, सब छुप-छुप कर रोते हैं।
अवसादों-चिन्ता-तनाव में, वे नर जन्म को खोते हैं।।
धन-पद आदि नश जाने से, मैं निर्भार हुआ मानूँ।।1।।
पत्नी-पुत्र साथ न देते, रो-रो कर सब कहते हैं।
ठुकते-पिटते फिर भी मोही, घर में घुसकर रहते हैं।।
मैं एकत्व भावना भाकर, हूँ स्वतंत्र ऐसा जानूँ।।2।।
टी.वी., कैंसर, ब्लडप्रेशर के, भय से भागे फिरते हैं।
कोरोना को रोको ना, बस यही प्रार्थना करते हैं।।
मैं तो रोग रहित, तन विरहित, 'अजर-अमर' हूँ यह गाऊँ।।3।।
पुण्योदय में जो हंसते हैं, पापोदय में रोते हैं।
आर्त-रौद्रमय भावों को कर, जीवन व्यर्थ ही खोते हैं।।
यश-अपयश अरु लाभ-हानि से, भिन्न हूँ 'ज्ञायक' मैं ध्याऊँ।।4।।

जीवन निहारें - जीवन निखारें...

(1)

जीवन का परिमार्जन

''यदि व्यायाम देह के लिए है, तो पढ़ना मन के स्वास्थ्य के लिए कारगर है। दोनों पर समानरूप से निगाह रख कर संतोष को अपना लेना चाहिए।''

"If exercising is for the body, then reading is effective for the health of the mind. By taking care of both equally, we can get satisfaction." **- अज्ञात**

हम अनादिकाल से चार गतियों (मनुष्य, तिर्यंच, देव, नरक) में अनेक शरीरों को धारण करते हुए जन्म-मरण की निरंतर चलने वाली शृंखला में वर्तमान में मनुष्य शरीर को धारण करके जीवन जी रहे हैं।

जो भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीरधारी दिखाई देते हैं, उनमें मनुष्य का शरीर अर्थात् मनुष्य जन्म दुर्लभ/बहुमूल्य/सुन्दर होने से सर्वोत्तम कहा गया है। जैसा कि कहा गया है - **'बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभदेह मानव का मिला।'**

इस मनुष्य जीवन में विचार करने व तदनुसार व्यवहार अर्थात् जीवन जीने की विशेष सामर्थ्य जीव को प्राप्त होती है, वह अन्य किसी अवस्था में नहीं होती।

हमारा यह सौभाग्य है कि हम अभी मनुष्य जीवन जी रहे हैं। जहाँ पर हमें शारीरिक/मानसिक/पारिवारिक/सामाजिक/राजनीतिक/भौतिक अनेक प्रकार के संसाधन विशेषरूप से प्राप्त हुए हैं, जिनका सदुपयोग करते हुए हम अपने जीवन को सुख/शांतिमय बना सकते हैं; परन्तु प्रायः देखा जा रहा है कि मनुष्य अत्यंत तनाव में रहते हुए अशांति का जीवन जी रहा है।

हम जो भी साधन शांति के लिए जुटाते हैं, वह साधन ही हमारी अशांति का कारण बनते जा रहे हैं। यहाँ रहने वाला प्रत्येक मनुष्य दु:खमय, अशांत जीवन जी रहा है।

'सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते सुख जाता दूर है'।

इसका मूल कारण क्या है ?

हम जितना दूसरों के जीवन को देख कर; अपने जीवन को सँवारना चाहते हैं, उतना वह और विद्रूप होता चला जाता है। हम यदि चाहते हैं कि हमारे जीवन में शांति हो, हमारे व्यक्तित्व का विकास हो, हम स्वयं तो शांतिमय जीवन जिएँ ही; लेकिन दूसरों की शांति में भी कारण बन सकें; तो उसके लिए आवश्यक है कि हम अपने जीवन को देखें, उसे जरा गौर से निहारें, तो हम अपने जीवन अर्थात् व्यक्तित्व का विकास/परिमार्जन कर सकेंगे।

वैचारिक परिवर्तन बिना परिमार्जन संभव नहीं है; क्योंकि जिन विचारों के अनुसार चलते हुए हम आकुलित हो रहे हैं, उन्हीं विचारों को और बढ़ाते हुए, मजबूत करते हुए तो हम सुखी नहीं हो सकते। अब आवश्यकता है परिवर्तन की। परिवर्तन ही जीवन में परिमार्जन करेगा। परिमार्जन ही अवगुणों का विसर्जन और उत्सर्जन करेगा।

इसीलिए हम यह श्रृंखला प्रस्तुत कर रहे हैं 'जीवन निहारें–जीवन निखारें' – हम अपने स्वयं के जीवन को देखने, जीवन में होनेवाले दोषों का परिशीलन करने, उन दोषों की स्वीकृति करने की सामर्थ्य पैदा कर सकें – तो जीवन निखरेगा, चमकेगा।

अशांति के कारण कहीं बाहर नहीं हैं, अशांति के कारण हमारे अंदर ही हैं, उनका अन्वेषण यदि किया जाए तो निश्चित ही हम अपने जीवन को निखार सकते हैं।

सच्चाई यह है कि हम अपने जीवन को अर्थात् अपने विचार - आचार-आहार-विहार को देखते ही नहीं हैं, हमारी नजर तो अर्जुन की तरह एकमात्र संसाधनों की प्राप्ति करने को लक्ष्य बनाकर उनकी प्राप्ति के लिए ही लगी हुई है। वह संसाधन कैसे भी मिलें ? कभी भी मिलें ? कहीं भी मिलें ? हम केवल उनको ही प्राप्त करने के लिए अपने जीवन को समर्पित कर रहे हैं और यही है हमारी जीवन की अशांति का कारण।

यदि हम अपने मन, वाणी, आचरण के दोषों को देखें और आगम के अनुसार उन दोषों को दूर करते हुए यदि परिमार्जन करें तो हमारा जीवन निश्चित ही निखरेगा।

यहाँ पर हम यह नहीं कहना चाहते हैं कि हम स्वप्न न देखें। आप लौकिक और लोकोत्तर उन्नति के लिए सोते-जागते स्वप्न देखें; पर सच में तो वही स्वप्न साकार होते हैं, जो जागृत अवस्था में देखे जाते हैं या जिनके कारण हम जागृत हो जाते हैं; परंतु हम ऐसे स्वप्न भी न देखें जो हमारी रात और दिन की नींद/चैन को समाप्त कर दें। हम ऐसे स्वप्न भी न देखें जो दूसरों की नींद खराब कर दें/जीना मुश्किल कर दें। हम अभी तक ऐसा ही कर रहे हैं अतः हम तो अशांति प्राप्त कर ही रहे हैं परंतु दूसरों के जीवन में भी अशांति का ही विष घोल रहे हैं।

'जीवन निहारें - जीवन निखारें' लेखमाला में हमारे विचार, हमारे शब्द, हमारा चरित्र कैसा हो ? इस पर आगम के आलोक में विचार करेंगे और प्रयास करेंगे कि हम अपने जीवन को निखार सकें। ○○○

लक्ष्य दूर है यही सोचकर, हार मान जो रह जाते।
सर्व सुलभ साधन पाकर भी, असफलता ही वे पाते।।
धीरे-धीरे कदम बढ़ाते, न डरते जो विघ्न-भयों से,
हिम्मत कर जो आगे बढ़ते, वही सफलता हैं पाते।।

(2)

आत्मनिरीक्षक बनें

"यदि पौधे को निरंतर पानी डालते रहे, तो कुछ समय पश्चात् सुंदर सुमनों से सुशोभित होता है; उसी प्रकार आपके द्वारा किए जाने वाले सत्कार्य भविष्य में अच्छे फल ही देते हैं।"

"If the plant is watered regularly, after some time it will be decorated with beautiful flowers; same way the good works done by you give you good results in future." - अज्ञात

हर व्यक्ति की अपनी एक अलग पहचान होती है, वह पहचान ही उसका व्यक्तित्व कहलाती है।

व्यक्तित्व एक तो शारीरिक संरचना के आधार पर होता है, जो प्रकृतिदत्त है - गौर वर्ण, लंबा-चौड़ा शरीर, प्रभावक मुद्रा, बड़ी व सुंदर आँखें इत्यादि। और दूसरा वैचारिक व्यक्तित्व है; यह प्रकृतिदत्त भी हो सकता है - जैसे कि कोई गुस्सैल है, कोई स्वभाव से ही ईमानदार, परिश्रमी, सहयोगी या प्रसन्नचित्त रहनेवाला है।

इन दोनों ही व्यक्तित्व को हम बहिरंग और अंतरंग व्यक्तित्व भी कह सकते हैं। ये दोनों ही प्रकृतिदत्त भी हैं, पर इनमें हम कुछ परिमार्जन करके भी अपने व्यक्तित्व को आकर्षक बना सकते हैं।

जैसे कि बहिरंग व्यक्तित्व में जो हमें चेहरा मिला है, उसमें बदलाव नहीं कर सकते; परंतु हम अपने चेहरे को स्वच्छ रखकर, बालों को संभाल कर, अच्छे कपड़े पहन कर अपने व्यक्तित्व को आकर्षक बना सकते हैं।

इसी तरह हम अंतरंग व्यक्तित्व को भी सत्साहित्य पढ़कर, अच्छी आदतों को अपनाकर आकर्षक बना सकते हैं। हम जो भी यहाँ चर्चा करेंगे वह अपने जीवन अर्थात् व्यक्तित्व को स्वयं निहार कर, उसमें जो परिमार्जन किया जा सकता है, उसकी ही चर्चा करेंगे।

हम सबसे पहले अपने जीवन को निहारने के लिए एक 'वॉचमैन' बनें। वॉचमैन जिस बंगले, मंदिर या फैक्ट्री में कार्य करता है, वहाँ चारों ओर से उस स्थान को वॉच करते हुए/देखते हुए उसकी सुरक्षा करता है, उसका ध्यान रखता है।

इसी प्रकार हम अपने जीवन को वॉच करें, अच्छी तरह से देखें और कहाँ त्रुटि हो रही है ? कहाँ चूक हो रही है ? जिससे कि लोग हमें पसंद नहीं करते हैं, लोग मजाक बनाते हैं यह समझ कर हम उन दोषों को दूर करने का प्रयास करें तो अवश्य ही जीवन निखरेगा।

Watch शब्द में 5 अक्षर हैं W A T C H इन पाँचों ही अक्षरों के अनुसार हम यहाँ पर कुछ समझेंगे; सबसे पहले –

1. 'W' - Watch your 'word'

हम अपने शब्दों को देखें। हम जो बोलते हैं, जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं, क्या वे शब्द जिससे संवाद किया जा रहा है, उसके योग्य हैं ? जब बोलना चाहिए तब बोल रहे हैं ? जो बोलना चाहिए वह बोल रहे हैं ? यदि हम इसका निरीक्षण करेंगे तो पायेंगे कि हम अनेक बार जब बोलना चाहिए, तब नहीं बोलते, बल्कि जब, जैसी मर्जी होती है, तब बोल जाते हैं और वह बोलना ही हमारे विवाद/विसंवाद, अपमान और क्लेश का कारण बन जाता है।

हम योग्य व्यक्ति के साथ योग्य शब्दों का प्रयोग नहीं करते, तू-तड़ाक कर बोलते हैं, गाली-गलौज करके बोलते हैं। अनेक तकिया-कलाम जैसे – क्या ?, समझ में आया !, समझे कि नहीं ! मतलब, बट, एंड इत्यादि शब्द बीच-बीच में बोलकर हँसी के पात्र बनते रहते हैं। इसलिए हम अपने शब्दों को अच्छी तरह से देखें और फिर जो दोष दिखाई दें उनका परिमार्जन करें।

2. 'A' - Watch your 'actions'

चलते, फिरते, बोलते, घूमते, मंदिर में पूजन करते, स्वाध्याय करते, अनजाने ही हम कुछ इस प्रकार के एक्शन करते हैं, चलते हैं, हाथ घुमाते हैं अथवा गर्दन मटकाते हैं, जिसको देखकर लोग हमसे दूरी बनाए रखते हैं, हमारा मजाक बनाते हैं इसलिए हम अपने 'एक्शन' का निरीक्षण करें कि हम बोलते समय अनावश्यकरूप से हाथ तो नहीं हिलाते, कोई बात समाप्त होते ही ताली मारने के लिए हाथ आगे तो नहीं बढ़ाते, बोलते-बोलते जीभ बाहर तो नहीं निकालते, बोलते समय हमारा थूक बाहर तो नहीं निकलता, हम अनावश्यक ही खिलखिला करके तो नहीं हँसते, हम सभा में देर से पहुँच करके भी हिलते-डुलते सबसे आगे जाकर के तो नहीं बैठते, हम सभा में कोई हास्य की बात आने पर या कोई प्रसंग बनने पर पीछे मुड़-मुड़कर के तो नहीं देखते ? इत्यादि।

हम अपने एक्शन को देखेंगे, विचार करेंगे तो लगेगा कि मैं सही नहीं कर रहा हूँ और हम सुधार करके अपने व्यक्तित्व को निखार सकते हैं।

3. 'T' - Watch your 'thoughts'

'अयं निजः परोऽवेति' की भावना/स्वार्थवृत्ति हमें आगे नहीं बढ़ने देगी, प्रशंसनीय नहीं बनने देगी। आपने सुना भी होगा 'छोटी सोच और पैर की मोच' आगे नहीं बढ़ने देती। हम एकांत में बैठकर अपने दिन भर में चलने वाले विचारों का विश्लेषण करें -

♦ हम जहाँ काम करते हैं, वहाँ हम किस बात को लेकर किसी से नाराज होते हैं ?

♦ क्या किसी की उन्नति को देखकर हम सच में प्रसन्न होते हैं ?

♦ क्या किसी के दोष देखकर हम उसके वे दोष दूर करना चाहते हैं ? या दोष दूसरों को बता कर उसका अपमान करना चाहते हैं ?

♦ क्या हम जाति–पाँति का भेदभाव अपने मन में पालकर चलते हैं ?

♦ क्या हम अपने परिवार के अलावा अन्य किसी के बालक–बालिकाओं को आगे बढ़ते देखना चाहते हैं या नहीं देखना चाहते हैं ?

♦ क्या व्यापार में हम कैसे भी पैसा कमाना चाहते हैं ?

♦ क्या हम जो भी कार्य करते हैं] उसका यश केवल अपने लिए ही लेना चाहते हैं ? क्या हम मात्र यश लेना चाहते हैं ? काम नहीं करना चाहते हैं ?

♦ क्या हम किसी संगठन में जुड़कर अपने आपको ही हाईलाइट करना चाहते हैं ?

हमारी यदि ऐसी भावनाएँ हैं तो कोई भी हमारा नेतृत्व स्वीकार नहीं करेगा और इतना ही नहीं वह अपने नेतृत्व में भी हमें रखने के लिए तैयार नहीं होगा; इसलिए इन दोष पूर्ण विचारों/छोटी सोच को अपने मस्तिष्क, हृदय से बाहर करके व्यक्तित्व को चमकाया जा सकता है।

4. 'C' - Watch your 'character'

हम अपने चरित्र को देखें। हमारा आचरण–हमारा खानपान, बोलचाल का तरीका, व्यापार या काम करने का तरीका कैसा है ? यदि आप पुरुष हैं तो माता–बहनों के प्रति और आप यदि महिला हैं तो परपुरुषों के प्रति आपका भेदभावपूर्ण व्यवहार, आपका अनपेक्षित आकर्षण और स्वार्थी/लालची वृत्ति यह सब आचरण प्रशंसनीय नहीं हैं। यदि आप अपने आचरण को निहारेंगे तो जीवन को निखारेंगे। हमारा सदाचरण/शील हमारा शृंगार है, वही हमें सुन्दर और आकर्षक बनाता है।

इसी को हम दूसरे प्रकार से भी कह सकते हैं 'Watch your capability' आप अपनी क्षमता को देखें। कई बार हम क्षमता न होते

हुए भी जिम्मेदारियाँ ले लेते हैं और उन्हें निभा नहीं पाते तो अपमानित होते हैं और कई बार हम अपनी क्षमता से कम जिम्मेदारियाँ लेते हैं, तब भी हम लोगों के बीच में प्रत्यक्ष या परोक्ष हँसी के पात्र होते हैं। चाहे वह क्षमता तन की हो या धन की, हम अपनी क्षमता को पहचान कर ही कार्य करें तो, कभी भी हम तनाव में जीवन नहीं जियेंगे, बदनामी जीवन में नहीं आएगी। हम अपनी क्षमता को जानकर तदनुसार यदि प्रवर्तन करेंगे तो निश्चित ही हमारा व्यक्तित्व निखरेगा।

5. 'H' - Watch your 'habits'

हम अपनी आदतें पहचानें। हमें अपनी बोलने, चलने की आदत अच्छी तरह से देखना चाहिए। कुछ लोगों को बात-बात पर झूठ बोलने की आदत होती है, वादा करके भूलने की आदत होती है, हमेशा ही देर से आने की आदत होती है, किसी से कोई चीज लेकर बिना याद कराये वापस नहीं देने की आदत होती है, हर किसी से हर वस्तु माँगने की आदत होती है, सभी के बीच में अन्य किसी का ध्यान रखे बिना अकेले ही खाने की आदत होती है, दूसरों से मिल-बाँट करके नहीं खाने व साथ में नहीं चलने की आदत होती है। यदि हमको लगता है कि सच में इन आदतों वाला कोई हमारे सामने हो तो हम पसंद नहीं करेंगे तो हम अपनी आदतों को बदलने का प्रयास करें, हमारा जीवन अवश्य ही निखरेगा।

जिसतरह एक watchman मंदिर, घर की पूरी तरह निगरानी करते हुए जहाँ से भी कोई खतरा है, उस खतरे के द्वार को बंद कर सुरक्षित रखता है, उसी तरह हम अपने जीवन के 'वॉचमैन' बनें। अपने शब्द, चेष्टा, विचार, चरित्र और क्षमता और आदतों का निरीक्षण करते हुए उनमें परिमार्जन करें तो हमारा जीवन/व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक बनेगा।

○○○

(3)

हमारे विचार - सुखी जीवन का आधार

''यदि शारीरिक शक्ति न भी हो, लेकिन अंतर्मन में अदम्य आत्म-विश्वास हो तो सफलता को सहजता से प्राप्त किया जा सकता है।''

"Even if there is no physical power, but if there is indomitable confidence within then success can be achieved easily."

- अज्ञात

किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके विचार, वाणी और कर्म के आधार से पहचाना जा सकता है। यदि हम अपने व्यक्तित्व को आकर्षक बनाना चाहते हैं, सर्वप्रिय बनना चाहते हैं, जीवन में शांति चाहते हैं, भावी जीवन भी हमारा सुख-शांतिमय हो, धर्म का समागम प्राप्त हो - ऐसा चाहते हैं तो हमें अपने विचार, वाणी और कर्म को निहारना होगा, निखारना होगा तभी हमारा जीवन निखरेगा।

हम यहाँ पर क्रमश: विचार, वाणी और कर्म के माध्यम से चर्चा को आगे बढ़ाएँगे। हमारे आचार्य भगवंतों ने हमें प्रेरणा दी है कि जो सज्जन व्यक्ति है/धर्मात्मा है/जिनको लोग अपना आदर्श मानते हैं/जिनका आदर करते हैं, उनके जीवन में किस प्रकार की भावनाएँ रहती हैं; यदि हम भी उन भावनाओं को अपने जीवन में लाएँ, उस प्रकार के विचार हमारे हों तो हमारा जीवन भी एक आदर्श जीवन बन सकता है।

जैनदर्शन की गीता के रूप में विख्यात 'तत्त्वार्थसूत्र' ग्रंथ में 'आचार्य उमास्वामी' देव लिखते हैं -

'मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु।।7/11'

प्रत्येक प्राणी के साथ हमारा मैत्री भाव हो, जो हमसे गुणों में अधिक हैं/गुणवान हैं ऐसे व्यक्तियों के प्रति प्रमोद/प्रसन्नता का भाव हो, जो जीव

कष्ट में हैं/दु:खी हैं, उनके प्रति करुणा का भाव हो और जो अविनयी हैं/दुर्जन हैं/उद्दंड हैं ऐसे व्यक्तियों के प्रति हमारी मध्यस्थता की भावना हो।

'आचार्य अमितगति' ने 'सामायिक पाठ' में यही भावना व्यक्त की है –

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव।।1।।

इन चार प्रकार के विचारों को ही, 'मैत्री भावना, प्रमोद भावना, कारुण्य भावना और माध्यस्थ भावना' नाम से जाना जाता है। आप इन भावनाओं का विचार करेंगे तो पायेंगे कि यह कितनी उदात्त भावनाएँ हैं, हमारे जीवन को कितना तेज देने वाली भावनाएँ हैं, कितना निखारने वाली भावनाएँ हैं।

1. मैत्री भावना – 'प्रेम भाव हो सब जीवों में' अथवा 'मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे' इस उदात्त भावना से हमारा चित्त भरा हुआ हो। कोई भी प्राणी चाहे वह किसी भी गति का हो, किसी भी जाति का हो, निर्धन हो, अमीर हो, किसी भी धर्म को मानने वाला हो, वह मनुष्य या पशु होने से पहले अथवा हिंदू-मुसलमान होने से पहले एक जीव है/प्राणी है। मैं भी जीव हूँ। हममें और उसमें यह समानता है कि मैं जीव हूँ, वह जीव है, मैं ज्ञान-दर्शन आदि सहित हूँ, वह भी ज्ञान-दर्शन आदि सहित है, मैं सुख चाहता हूँ, वह भी सुख चाहता है। हम सब समान हैं तो फिर उनमें मित्रता की ही भावना हो। किसी भी प्राणी के प्रति शत्रुता की भावना हमारे मन में उत्पन्न न हो, यदि ऐसा होता है तो हमारा जीवन कांतिमान होगा।

2. प्रमोद भावना – 'गुणीजनों में हर्ष प्रभो' अथवा 'गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे' की भावना हृदय में हो। मनुष्य की सबसे बड़ी कमी यह है कि वह दूसरों के विद्यमान गुणों को भी न

देखकर, जो दोष उसमें नहीं है, उन्हें भी देखता है और अपने में जो दोष हैं उनको भी गुण के रूप में देखता है। इस कारण से अनेक गुणवंत व्यक्तियों के समागम में आकर भी उनके गुणों की प्रशंसा नहीं करता, उनको आदर नहीं देता और जो गुणवानों को आदर नहीं देता, उसका भी कहीं आदर नहीं होता।

यह भावना कहती है कि गुणीजनों को देखकर हमारे हृदय में अत्यंत प्रेम उमड़ आवे। जिस तरह बादल सहज ही उमड़ करके आते हैं और बरसने लगते हैं। माता के हृदय में अपने छोटे से शिशु को देखकर प्रेम उमड़ आता है, उसके स्तन में दूध प्रवाहित होने लगता है; इसी प्रकार हम गुणीजनों को देखकर हृदय से प्रसन्नता व्यक्त करें।

प्रत्येक व्यक्ति में कोई न कोई गुण होता है, यदि हम दूसरों के गुण देखेंगे, उन गुणों की प्रशंसा करेंगे, गुणीजनों की प्रशंसा करेंगे, तो हमारे अंदर भी वह गुण उत्पन्न होगा। अन्य के गुण हमारे में आएँ या न आएँ परंतु सबसे बड़ा गुण और लाभ यही होगा कि हम गुणीजनों का आदर कर रहे हैं/उनको देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। हमारी प्रसन्नता देखकर हर व्यक्ति कहेगा - "यह कितना गुणग्राही है? जिसके भी गुण देखता है, कितनी उदारता के साथ उनकी अनुमोदना करता है/प्रशंसा करता है। बहुत ही सज्जन व्यक्ति है।" यह भावना भी हमारे जीवन को निखारने वाली भावना है।

3. कारुण्य भावना - 'करुणास्रोत बहे दुःखियों पर' अथवा 'दीन दुःखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे' की भावना हमारे हृदय में निरंतर वृद्धिंगत हो।

हर प्राणी का दुःख दूर करने के लिए हम सहयोग कर सकें, यह संभव नहीं है, किसी तड़पते हुए पशु अथवा व्यक्ति को हम उचित

उपचार दिला सकें, शायद यह भी हमारे लिए उस समय संभव न हो; फिर भी हमारा हृदय अन्य जीवों के दु:ख को देखकर दु:खी हो उठे। हमारे हृदय में यह भावना उत्पन्न हो 'हे भगवन्! इसका दु:ख दूर कैसे होगा? हे प्रभु! कोई भी प्राणी दु:खी न हो।' 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः' की हमारी उदार भावना हो।

वर्तमान में कोरोना रोग चारों और फैल रहा है – ऐसे में हम घर से बाहर भी नहीं निकल पा रहे हैं; परंतु हम घर में रह करके भी पूरे विश्व में जो बीमार हो रहे हैं, जिनके परिवारों में मृत्यु हो रही हैं, उनके प्रति अपनी संवेदनाएँ रख सकते हैं। यहाँ तक कि केवल मनुष्य ही नहीं, कोई पशु-पक्षी भी रोगी/दु:खी न हो, भूखा-प्यासा न रहे और यदि कोई ऐसा दिखता है, तो उनको देख करके हमारे हृदय में करुणा का भाव प्रवाहित होने लग जाए, दया का भाव प्रवाहित होने लग जाए और यथासंभव उनके दु:ख दूर करने के लिए प्रयास करें। यह दयालुता हमारे चरित्र को निखारने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी।

4. माध्यस्थ भावना – 'दुर्जन में मध्यस्थ विभो' अथवा 'दुर्जन क्रूर कुमार्गरतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे' जो विपरीत आचरणवाले दुराचारी/भ्रष्टाचारी/अनाचारी हैं, धर्म के विपरीत आचरण करनेवाले हैं; जिनकी मान्यताएँ वस्तुव्यवस्था से विपरीत हैं, न्याय-नीति से विपरीत हैं, अन्याय-अनीति से ग्रस्त हैं ऐसे व्यक्तियों के प्रति भी हमारे हृदय में दुष्टता का भाव न हो; बल्कि मध्यस्थपने का भाव हो। न हम उनसे कोई अपेक्षा रखें, न ही उनके सामने उपेक्षा करें; बल्कि उनसे मध्यस्थता रखते हुए/उनसे यथोचित दूरी बनाए रखते हुए उनसे व्यवहार करें।

दुर्जन व्यक्ति की मित्रता तो हमें दुर्जनता की ओर ले ही जाती है; परंतु उनसे यदि हम शत्रुता करते हैं, उनकी उपेक्षा करते हैं तो वह भी

हमारे जीवन में संकट उत्पन्न कर सकती है। इसलिए उनसे मित्रता/शत्रुता न करके मध्यस्थता का भाव रखते हुए व्यवहार करें।

यह भी विचारणीय है कि आज जो दुराचारी है, वही सत्य समझ कर सदाचारी भी हो सकता है। जिसे हम भ्रष्टाचारी कह रहे हैं, वही सच में कल शिष्टाचारी भी हो सकता है। जो आज धर्म के विरुद्ध आचरण करने वाला है, वही सन्मार्ग पर चलकर, हमसे बहुत आगे जा सकता है। इसलिए उससे वर्तमान की परिस्थिति को देखते हुए राग करना तो उचित नहीं है; परंतु द्वेष करना भी उचित नहीं है। हम मध्यस्थ भाव रखकर जीवन जियें।

मित्रो! इन चार भावनाओं को हम अपने जीवन में लाने का प्रयास करें। हम अपने जीवन को निहारें कि क्या ऐसी भावनाएँ/विचार हमारे हृदय में हैं? यदि नहीं हैं तो इन भावनाओं/विचारों को अपने जीवन में स्थान देकर और अपने जीवन को निखारें।

○○○

कौन कब आकर कहाँ से?

कौन कब आकर कहाँ से? पंछी बैठा डाल पर।
मेहमान सम उन पंछियों को, माना हमारे हो गये।।
रात-दिन तो जो हमारे, कष्ट के कारण बने थे।
मोह मदिरा के नशे में, वे ही प्यारे हो गये।।
छीन कर घरबार जिसने, बेसहारा कर दिया।
बैठकर सिर पर हमारे, अब सहारे हो गये।।
धन-रूप-पद था पास मेरे, तब सभी मेरे ही थे।
भाग्य पलटा, बिखरा वैभव, अपने पराये हो गये।।
स्वार्थ सिद्धि के लिए ही, रिश्ते बनते सब यहाँ।
समय ही पर पता चलता, क्या से क्या सब हो गये।।

(4)

उन्नत विचार - सफलता का आधार

''जिंदगी में कुछ अनोखा कर दिखाने की महत्त्वाकांक्षा का होना ही पर्याप्त नहीं है; उसके लिए आत्मविश्वास, दृढ़इच्छा-शक्ति, परिश्रम और ईमानदार कोशिश की आवश्यकता है।''

"It is not enough to wish to achieve extraordinary in life; it needs Self Confidence, Perseverance, Hard work and Honest Efforts to achieve the Big Goal." **- अज्ञात**

पूर्वोक्त भावनाओं के अतिरिक्त अन्य भी विशिष्ट भाव/विचार हैं, जिनको लेकर हम अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकते हैं, जिनमें से कुछ भावों/विचारों की चर्चा हम यहाँ क्रमशः कर रहे हैं -

1. **'बड़ा/पूर्ण लक्ष्य बनाने की क्षमता'** - एक आदर्श जीवन अथवा आकर्षक व्यक्तित्व के लिए यह आवश्यक है कि हम जो भी लक्ष्य बनायें, वह लक्ष्य बड़ा हो, पूर्ण हो। **'पूर्णता के लक्ष्य से की गई शुरुआत ही, सच्ची शुरुआत कहलाती है।'** हमने देखा होगा कि दुनियाँ में अनेक लोग हैं, जो कार्य करना चाहते हैं, परंतु वे बहुत छोटे-छोटे लक्ष्य लेकर ही चलते हैं; इसलिए उन्हें कोई विशिष्ट सफलता की प्राप्ति नहीं होती और न ही वह एक आदर्श व्यक्तित्व बन पाते हैं। हम जो कुछ भी बनना चाहते हैं, जिस क्षेत्र में भी कार्य करना चाहते हैं, हमेशा ही एक बड़ा लक्ष्य लेकर के चलें।

यह पहले कहा जा चुका है कि हम अपनी क्षमता को पहचाने और क्षमता को पहचान कर ही हम अपना लक्ष्य निर्धारित करें, मात्र वर्तमान की परिस्थितियों को ही न देखें, मात्र वर्तमान में हमारे पास जो साधन हैं उनको ही न देखें; परंतु हम एक ऊँचा लक्ष्य बनाएँ।

जो भारतीय प्रशासनिक सेवा का लक्ष्य लेकर के चलेगा वह यदि

दुर्भाग्य से वहाँ तक नहीं पहुँचता है तो प्रादेशिक प्रशासनिक सेवा में तो चयन होगा ही, जो विद्यार्थी 95 प्रतिशत का लक्ष्य लेकर के चलता है यदि दुर्भाग्य से वह वहाँ तक न पहुँचे तो 85 प्रतिशत अंक तो लाता ही है; इसलिए हमें हमेशा ही पूर्णता का लक्ष्य लेकर ही कार्य प्रारंभ करना चाहिए, कभी भी आधे-अधूरे लक्ष्य लेकर हमें नहीं चलना चाहिए, अन्यथा हम कभी भी जीवन में सफल नहीं हो पायेंगे।

लोकोत्तर दृष्टि से भी देखें तो हमारा लक्ष्य पूर्ण सुख ही है/अनंत सुख ही है और उस अनंत सुख की प्राप्ति के लिए जो योग्यतम साधन जुटाए जाने चाहिए, जो पुरुषार्थ किया जाना चाहिए, वही पुरुषार्थ करने योग्य है। यदि कदाचित् अभी वर्तमान में हमारे पास वह साधन उपलब्ध नहीं हैं **तो जुनून पैदा करें, अधीर न हों, हताश न हों। लक्ष्य को कमजोर न करें।** कहा भी है - **'लक्ष्य न ओझल होने पाए'** यदि हमारे चित्त से लक्ष्य ही गायब हो गया तो हम कभी भी पूर्ण लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकेंगे।

2. लक्ष्य निर्धारण - हमारी सफलता और असफलता के पीछे लक्ष्य का निर्धारण किया जाना आवश्यक है। यदि हम योग्य लक्ष्य निर्धारित नहीं कर पाते हैं और फिर आगे बढ़ जाते हैं तो असफलता ही मिलेगी। हम अपने जीवन का/अपनी क्षमताओं का/अपनी आवश्यकताओं का/अपने साधनों का मूल्यांकन करते हुए लक्ष्य का निर्धारण करें; केवल देखा-देखी लक्ष्य निर्धारण करने वाले सफल नहीं होते या सफल हो भी जाएँ तो भी उनका जीवन सार्थक नहीं होता। हमारे आसपास के अनेक युवा अन्य की देखादेखी उचित लक्ष्य का निर्णय न करने से असफलता मिलने पर हताशा से भरे हुए, बाह्य संसाधनों, समय, व्यक्तियों पर दोषारोपण करते देखे जाते हैं तथा स्वतः कुंठाग्रस्त होकर अन्य को भी हताशा और निराशा के विकट भँवर में झोंक देते हैं जबकि सबकी

क्षमतायें, उदयजन्य अनुकूलता/प्रतिकूलतायें पृथक्-पृथक् होती हैं, यह सब विचार कर ही लक्ष्य निर्धारण करना चाहिए।

हमने जो चाहा वह मिल गया, यह मात्र सफलता है; लेकिन हमने हमारे प्रयोजन को सिद्ध किया, हमने अपने जीवन में शांति-सुख-चैन प्राप्त किया, हमने वह कार्य किया जो हमारे लिए तो सुखद है ही; परंतु अन्य के लिए भी दुखद नहीं है, सुखद ही है; यह हमारे कार्य की सार्थकता है; इसलिए हम कार्य आरंभ करने से पहले '**लक्ष्य निर्धारण**' बहुत ही सोच-विचार कर करें और फिर आगे बढ़ें तो हमारे जीवन में सफलता के साथ सार्थकता भी होगी।

3. उत्साह संपन्नता – हम जो भी कार्य करें, वह उत्साह से भरपूर हो करके करें। अनेक लोग पहले ही अनेक '**तो**' लगा करके कार्य प्रारंभ करते हैं – सफल नहीं हुए तो ? वहाँ तक नहीं पहुँचे तो ? कोई विघ्न आ गया तो ? किसी ने साथ नहीं दिया तो ? कहीं बीमार पड़ गए तो ?

यह जो कुशंकाएँ हैं, यह व्यक्ति के पैरों में बेड़ी बन करके उसे आगे नहीं बढ़ने देती। 'यह कार्य हो करके ही रहेगा', 'उछलता मेरा पौरुष आज, त्वरित टूटेंगे बंधन नाथ' ऐसा लगे कि मेरा पुरुषार्थ ऐसा उछल रहा है कि मैं आज सर्व बंधनों को तोड़कर आज ही अपने लक्ष्य को प्राप्त करके रहूँगा। जो उत्साहहीन होते हैं, वह कुछ भी कार्य करने जाएँ, असफलता ले करके ही आते हैं।

एक कहावत है 'रोते-रोते गए और मरे की खबर लेकर आए'। जो व्यक्ति प्रारंभ से ही रो रहा है – यह कार्य हो नहीं सकता ? कोई तो साथ दे नहीं रहा ? कोई तो ऐसा कार्य कर नहीं रहा ? ऐसे प्रश्न लगा करके जो बढ़ने को तैयार नहीं है – विघ्न बाधाओं से जो डर रहा है, वह अपनी मंजिल तक नहीं पहुँच सकता।

मित्रो ! आवश्यक है कि हम उत्साह से संपन्न हों, हम भले एकाकी

हों, लेकिन सिंह की भाँति उत्साह/उमंग/उल्लास के साथ अपने लक्ष्य की ओर निरंतर बढ़ते रहें। जैसा कि सुभाषितकार कहते हैं -

उत्साह संपन्नमदीर्घ सूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वशक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ़सौहृदं च सिद्धिः स्वयं गच्छति वासहेतोः।।

अर्थात् जो उत्साह से संपन्न, बहुत अधिक विचार न करने वाला, क्रिया का जानकार, बुरी आदतों से दूर, सूर, कृतज्ञ और दृढ़ इच्छा शक्तिवाला होता है, सफलता उसके पास स्वयं ही आती है।

4. विघ्न बाधाओं से घबराएँ नहीं - लोक में अधिकांश देखा जाता है कि अच्छे कार्य करने वालों के लिए विघ्न बाधाएँ आती ही हैं; यह विघ्न बाधाएँ वास्तव में बाधाएँ न होकर मानो उस व्यक्ति की मानसिक परीक्षा के लिए हैं कि आप इतने बड़े लक्ष्य की ओर जा रहे हैं तो क्या उस लक्ष्य को पाने के आप हकदार हैं भी या नहीं? अथवा वह लक्ष्य आप पा लेंगे तो आप धैर्य-साहस के बिना उसे कैसे पचा पाएँगे? अतः वह विघ्न हमारी संकल्प शक्ति को मजबूती प्रदान करते हैं।

बाहुबली मुनिराज/पार्श्वनाथ मुनिराज/गजकुमार मुनिराज/गुरुदत्त मुनिराज आदि कितने मुनिराजों पर किस-किस प्रकार के उपसर्ग हुए; परंतु उन्होंने अपना मार्ग नहीं छोड़ा, अपनी एकाग्रता नहीं तोड़ी तो आज वह मोक्षरूपी लक्ष्मी का वरण कर पूर्ण सुख का भोग कर रहे हैं। यदि वे उपसर्गों से भयभीत हो जाते तो आज वह पूज्यपद को प्राप्त नहीं कर पाते।

देश की आजादी प्राप्त करने के लिए, कितने महापुरुषों ने अपना योगदान किया। उनके सामने कितनी विघ्न-बाधाएँ आईं? कितनी बार उन्हें जेल में डाला गया? कितनी उनको पारिवारिक प्रतिकूलताएँ दी गईं? कितनी शारीरिक यातनाएँ दी गईं? परंतु जो वज्र का हृदय लेकर अडिग रहे, उनकी बदौलत ही आज हम स्वतंत्र भारत में निवास कर रहे हैं। उनके लिए दिनकर की एक उक्ति उत्साहित करती है -

"सौभाग्य न सब दिन सोता है, देखें आगे क्या होता है।"

यह दुनिया का स्वरूप ही है कि पाप कार्यों के अनुमोदक बहुत मिल जायेंगे, साथ देने वाले मिल जायेंगे और जब भी आप कोई अच्छा कार्य करना प्रारंभ करेंगे उस समय आपके साथ कोई नहीं होगा, परन्तु घबराएँ नहीं जैसे ही आपको सफलता मिलना प्रारंभ होगी, लोगों की भीड़ आपके साथ होती चलेगी। आप तो स्व-पर हित की भावना से निश्चिंत होकर अपना कदम बढ़ाते चलें। जैसा कि कहा है -

श्रेयांसि बहु विघ्नानि, संभवन्ति पदे पदे।
अश्रेयसि प्रवृत्तौ च, प्रेरयन्ति पुनः पुनः।।
जग की अद्भुत रीति है बंधु, जिसे-समझना बड़ा कठिन।
श्रेय मार्ग के वीर पथिक को, पद-पद मिलते बहुत विघन।।
विषय-भोग अरु पाप पंथ को, प्रिय बन प्रेरित करते हैं।
धन्य धन्य वे शूर साहसी, आतमहित जो करते हैं।।

यह ध्यान रखें कि प्रतिकूलताओं/विघ्नों को पार करके ही कोई भी महान् बनता है जैसा कि एक गाने में प्रेरणा देने के लिए कहा गया है -

जिसने विष पिया बना शंकर,
जिसने विष पिया बनी मीरा।
छेदा गया बना मोती, जो काटा गया बना हीरा।।

जो भी लोकपूज्य हुए हैं, बहुमूल्य हुए हैं, वह सभी इन विघ्न-बाधाओं को पार करके ही हुए हैं।

5. ईर्ष्या का अभाव - हम अपने जीवन को देखें कि क्या हम किसी की प्रगति को देखकर प्रसन्न होते हैं ? यदि हमारा बेटा 85 प्रतिशत अंक लाता है और हमारे ही अधीनस्थ कर्मचारी का बेटा 95 प्रतिशत लाता है तो क्या हम खुश होते हैं ? तालियाँ बजाकर उसका उत्साहवर्धन करते हैं ? हमारे बेटे का किसी प्रतियोगिता में चयन नहीं होता; लेकिन हमारे

ही सामने रहने वाले एक चपरासी का बेटे का चयन हो जाता है तो क्या हम खुश होते हैं? उसकी पीठ थपथपाते हैं? समाज में सांस्कृतिक कार्यक्रमों में किसी अन्य के बेटा-बेटी आगे बढ़ते हैं तो उन्हें देखकर हमें खुशी होती है? किसी को दान देता हुआ देखकर आप उनकी प्रशंसा करते हैं? व्यापार में हमारे प्रतिद्वंदी को लाभ होता है तो क्या हम खुश होते हैं? किसी दूसरे की बहू प्रशंसनीय कार्य करती है तो क्या हम उसकी अनुमोदना कर पाते हैं? या केवल हम यह कहकर कि -

♦ आजकल शिक्षक पढ़ानेवाले नहीं हैं!

♦ काँपियाँ ढंग से चैक नहीं होती हैं।

♦ नंबरों से क्या अंतर पड़ता है, ज्ञान मिलना चाहिए!

♦ हम बेटे को बहुत आगे बढ़ने के लिए प्रेरित नहीं करते हैं, नहीं तो अहंकार हो जाता है।

♦ वह तो दो नंबर का पैसा दान करने वाले हैं।

♦ वह तो दिखावे के लिए काम करते हैं!

इत्यादि प्रकार से हम अपनी कमी को छुपाकर और दूसरों की प्रगति की अनुमोदना न करके यही सिद्ध कर रहे हैं कि हमारे अंदर उनके प्रति ईर्ष्या भाव है; हम दूसरों की प्रगति, दूसरों की प्रशंसा को देखकर खुश नहीं होते हैं, यह एक बहुत बुरा भाव है।

मित्रो! हम इस ईर्ष्या भाव जिसे 'अदेख सका भाव' अर्थात् दूसरे की प्रगति को नहीं देख सकने के भाव को जीवन से निकालें।

जिस तरह से हम अपनी उन्नति और प्रगति में खुश होते हैं, अपने परिवार वालों की प्रगति और उन्नति में प्रसन्न होते हैं; उसी प्रकार हम अपने आसपास के रहनेवालों के प्रगति/उन्नति/प्रतिष्ठा में भी खुश हों, उनकी अनुमोदना करें, उनकी प्रशंसा करें, उनका उत्साहवर्धन करें; हमारी यह भावना सभी के बीच में हमको प्रशंसनीय बना देगी।

6. हम आलोचक बनें, निंदक नहीं – हम किसी के दोष देखकर, उसका अपमान करने की भावना से, उसके समक्ष अथवा अन्य किसी के सामने जब उन दोषों को बढ़ा-चढ़ाकर कहते हैं तो वह निंदा कहलाती है। हम किसी व्यक्ति के परिश्रम/प्रयास/भावना आदि को अनदेखा करते हुए, मात्र उसके दोषों/कमी/असफलता को देखकर, उसको बुरा सिद्ध करने के लिए, कमजोर सिद्ध करने के लिए, दूसरों के सामने उसे नीचा दिखाने के लिए जब हम दोषानुवाद करते हैं, तब वह निंदा है।

किसी की भी, किसी के भी सामने, निंदा करने से हमें कभी भी यश की प्राप्ति नहीं होती। जो निंदा सुन रहा है, वह भी जिसकी निंदा सुन रहा है, उसके प्रति कोई दुर्भावना लाए या न लाए पर इतना अवश्य तय कर लेता है कि आप उसे पसंद नहीं करते हैं, आप उसकी बुराई कर रहे हैं।

अनेक बार किसी के दोष बताते हुए हम यह कह देते हैं कि "हम तो सत्य बात कह रहे हैं, जो उसमें कमी थी वही कह रहे हैं, आप वीडियो देख लीजिए, किसी अन्य से पूछ लीजिए; जो मैं कह रहा हूँ वह गलत कहाँ है?"

हो सकता है कि आप जो कह रहे हैं, वह सही हो परंतु कहने का अभिप्राय आपका खोटा है। आप उसको अपमानित करने के लिए कह रहे हैं, इसलिए यह कहना दोषपूर्ण है। यदि आप अपने आपको समझदार समझते हैं, दूसरों के दोष बतलाना चाहते हैं, तो आप आलोचक बनिए – आलोचक अर्थात् चारों ओर से वस्तु/पदार्थ/व्यक्ति को देखने वाले। आप देखिए कि उसके अंदर गुण क्या-क्या हैं? जिस कार्य में उसे असफलता मिली है उसका तो कोई एक कारण होगा ही परंतु वह कार्य करने तक उसने क्या-क्या किया? कितना-कितना परिश्रम किया? उन गुणों को भी देखें।

यदि कोई व्यक्ति अच्छा गाता नहीं है तो हो सकता है कि वह अच्छा

लेखक हो। जो अच्छा लेखक नहीं है, हो सकता है वह अच्छा व्यवस्थापक हो। हम जिसमें भी जो गुण हैं उन गुणों को भी देखें और फिर यदि आप उसके हितैषी हैं तो उन गुणों की प्रशंसा करते हुए, विद्यमान दोष की ओर भी इशारा करके कहें कि 'यदि इसमें और सुधार हो जाएगा तो आपको निश्चित ही सफलता मिलेगी' यदि 'आप इस कार्य में परिवर्तन कर लेते हैं तो आपका जीवन बहुत उज्ज्वल होगा' इस तरह यदि आप आलोचक बनेंगे तो कोई आपकी बुराई नहीं करेगा बल्कि लोग चाहेंगे कि वह आपसे पूछें कि मुझमें क्या कमी रह गई है? क्योंकि उन्हें पता है कि आप सच्चे दिल से उनके गुणों की प्रशंसा करते हुए, उनके दोष; निर्दोष होने के लिए बताएँगे।

7. निर्वांछिक बनें - हम समाज/परिवार में कोई भी कार्य करें तो वाँछा/चाह लेकर ना करें।

हर व्यक्ति यह पहले ही सोचता है कि मैं उसके यहाँ जाऊँगा तो 100 रुपये का लिफाफा दूँगा तो जब मेरे बेटे की शादी होगी वह 500 रुपये का लाएगा। हम उसको चाय पिला रहे हैं तो वह हमें नाश्ता कराएगा। हमने उसको नमस्कार किया है तो वह कहीं न कहीं हमारे काम आएगा। हम बिना चाह/अभिलाषा के कोई काम ही नहीं करना चाहते। यह चाहत बहुत बुरी बला है।

मोक्षमार्ग में भी यदि आप मोक्ष पाने की इच्छा रखते हैं तो आचार्यदेव लिखते हैं 'न मोक्षोऽपि मुमुक्षुताम्' मोक्ष की इच्छा रखनेवालों को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है, अपितु जो इच्छा से परे होकर सन्मार्ग पर चलते चले जाते हैं, उन्हें सहज ही अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है।

इसी तरह लौकिक में भी हम माता-पिता, पड़ोसियों या रिश्तेदारों की सेवा या सहयोग इसलिए न करें कि वे भविष्य में हमारे लिए कुछ काम आयेंगे या उनकी विरासत हमें मिलेगी। हम भगवान की पूजन

इसलिए न करें कि भगवान हम पर प्रसन्न होकर हमारा व्यापार चलायेंगे/ हमारे लिए पद प्रतिष्ठा की प्राप्ति करायेंगे। जो पद–पैसा–प्रतिष्ठा–यश की प्राप्ति के लिए भगवान की पूजन करता है उसे तो पाप का ही बंधन होता है; क्योंकि वीतरागी की पूजन करते हुए भी विषयभोग की अभिलाषा उसके चित्त में बलवती है और जो निर्वांछिक होकर धर्म आराधन करते हैं, उन्हें धन–पद और स्वर्ग आदि की प्राप्ति सहज ही होती है।

लोक में भी जो निर्वांछिक होकर कार्य करते हैं, उनके लिए ही समाज/परिवार अपने हृदय में स्थान देता है और जो वाँछा रखकर कार्य करता है उसे तो सभी लोभी/लालची/स्वार्थी कहकर उसके द्वारा किए गए कार्यों की निंदा ही करते हैं। सेवा में भी वह मेवा पाना चाहता है – ऐसा सभी मान करके ही चलते हैं; इसलिए यदि हम अपने जीवन को निखारना चाहते हैं तो सबसे पहले हम अपने जीवन को निहारना सीखें, अपने दोषों को परखना सीखें। जो दोष हमें दूसरों के अच्छे नहीं लगते वह दोष हमारे में न हों और यदि हैं तो उनका अभाव कैसे हो, इसका प्रयास हमारे द्वारा किया जाता रहे तो निश्चित ही हमारा जीवन निखरेगा।

8. 'विनय' को अपना गुण बनायें – एक आदर्श व सफल जीवन के लिए आवश्यक है कि हमारे जीवन में विनय हो। हम अपने जीवन को देखें कि क्या हम, हमसे जो ज्ञानवृद्ध/वयोवृद्ध/संयम वृद्ध हैं उनके प्रति विनय का भाव, आदर का भाव रखते हैं या नहीं ? जो हमसे रिश्ते में बड़े हैं उनके प्रति विनम्रता हमारे हृदय में है या नहीं ? जिनसे हम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, कुछ सीखना चाहते हैं, कुछ पाना चाहते हैं उनके प्रति विनम्रता है या नहीं ?

हमारे जीवन में पुण्योदय से हुई उपलब्धियों के साथ यदि विनम्रता नहीं है तो इसका अर्थ है हम कर्तृत्व/पद/सफलता के अहंकार में हैं। अहंकार निश्चित ही पतन का कारण होता है। इसलिए हमें सदा विनय–

शील रहना चाहिए। यदि हमने बहुत उच्च शिक्षा प्राप्त की है, बड़े-बड़े प्रमाण-पत्र हमें मिले हैं; परंतु यदि विनय नहीं है तो वह सब विद्या शोभा को प्राप्त नहीं होती। कहा गया है 'विनयेन शोभते विद्या' विनय के द्वारा ही विद्या शोभित होती है। नीतिकार ने कहा है 'विनय विना विद्या नहीं, विद्या विन नहीं ज्ञान।' विनय के बिना कभी विद्या की प्राप्ति नहीं होती।

गर्मी का समय था एक मटके में पानी रखा हुआ था और उसके ऊपर एक प्लेट रखी हुई थी। रोजाना ही कोई न कोई एक गिलास लेकर/लोटा लेकर आता और मटके में से पानी भर करके ले जाता। प्लेट यह बात बार-बार देखती कि जो भी लोटा आता है, घड़े को थोड़ा झुकाता है और पानी भर करके ले जाता है परंतु मुझे बिल्कुल भी पानी नहीं मिलता? तब उसने मटके से शिकायत की कि "हे मटके भाई! मैं आपके पास 24 घंटे रहती हूँ तो भी मुझे पानी नहीं मिलता और जो लोटा थोड़ी देर के लिए आता है, जग थोड़ी देर के लिए आता है उसे आप भर करके पानी दे देते हैं।"

मटके ने कहा "बहन जो लोटा/जग आता है, वह मेरे नीचे झुकता/रहता है तो मैं उसे भर करके पानी देता हूँ; परन्तु तुम तो मेरे सिर पर बैठी हुई हो इसलिए तुम्हें कुछ भी नहीं मिलेगा।"

इससे यही सिद्ध होता है कि जो विनम्र व्यक्ति हैं, उनके लिए ही विद्या-धन-आदर-सम्मान की प्राप्ति होती है। जो विनम्र व्यक्ति हैं उनके जीवन में ही बहुत कुछ लाभ होता है। कहा गया है -

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशो बलम्।।

जो अभिवादनशील हैं, विनम्र हैं (दूसरों के सामने झुकते हैं), वृद्ध-जनों के समीप जो बैठते हैं, उनकी आयु-विद्या-यश और बल बढ़ते हैं।

विनय के अन्य लाभ बतलाते हुए मनीषी कहते हैं -

"विनयः कारणं मुक्तेः विनयः कारणं श्रियः।
विनयः कारणं प्रीतेर्विनयः कारणं मतेः।।"

मुक्ति, लक्ष्मी, विनय, प्रीति और बुद्धि का कारण है विनय ही है।

विनम्रता का अर्थ चापलूसी नहीं है। विनम्रता का अर्थ अविवेकपूर्ण किसी के भी सामने झुकना नहीं है। जो हमारे आदर्श नहीं हैं, जो ज्ञान-ध्यान-तप-आचरण आदि में श्रेष्ठ नहीं है, फिर भी हम लोभ-लालच-भय के कारण उनके प्रति झुकते हैं, तो वह सच में विनम्रता नहीं है, वह तो चापलूसी है और धर्म मार्ग में उसे विनय मिथ्यात्व कहा गया है, अत:विनम्रता निर्वांछिक होकर और जो हमसे वरिष्ठ हैं, गुणों में अग्रणी है उनसे गुणों की प्राप्ति की अभिलाषा के साथ हृदय से झुकना उसको ही विनय कहा गया है।

9. 'कृतज्ञता' - यशस्वी व्यक्तित्व की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कृतज्ञता। कृत+ज्ञ=हमारे साथ जो कुछ भला किया गया है, जिसने उपकार/सहयोग किया है, उसका ज्ञान हमारे लिए हमेशा रहना चाहिए, कभी भूलना नहीं चाहिए।

हम अपने जीवन को, हृदय को निहारें कि क्या हमारे जीवन में कृतज्ञता है या नहीं ?

क्या हम अपने लालन-पालन करने, चलना सिखाने, पढ़ना सिखाने, तन-मन-धन से सहयोग करने, मार्गदर्शन देने, सही दिशा में आगे बढ़ाने, हमारी उन्नति की भावना भाने, हमें उन्नति के पथ पर चलते हुए देखकर हमारी प्रशंसा करनेवालों के प्रति आभार का भाव/धन्यवाद का भाव रखते हैं या नहीं ?

यदि कृतज्ञता का भाव हमारे हृदय में भरा हुआ नहीं है, तब हम

कृतघ्नी हैं। 'कृतघ्नी' को सबसे बड़ा पापी कहा गया है।

कृतज्ञता एक मनमोहक गुण है। हमारे जो माता-पिता, दादा-दादी एवं अन्य परिजन हैं, प्राथमिक कक्षा से लेकर जो गुरुजन हैं, जो हमारे मित्रगण हैं, जो हमें हर समय सहयोग करते हैं, प्रेरित करते हैं, जिन्होंने हमारे व्यापारिक/पारिवारिक कार्य में/स्वाध्याय में लगने के लिए/जिन्होंने मंदिर बनाने के लिए/संस्थान खोलने के लिए/संस्थान संचालित करने के लिए तन-मन-धन से सहयोग किया, समय का दान किया, श्रम का दान किया, अपनी अनुमोदनाओं का दान किया उन सबके प्रति हमारा मन कृतज्ञता से भरा हुआ होना चाहिए।

जो विनम्र होते हैं वे अपने ऊपर किए गए किसी भी प्रकार के उपकार को - चाहे आवश्यकता के समय एक गिलास पानी पिलाया गया हो, चाहे आवश्यकता के समय 50 रुपये का सहयोग किसी ने किया हो या हमारे लिए समय पर औषधि दी हो, कोई योग्य शिक्षा दी हो उन सभी के प्रति यावज्जीवन आभारी रहने का भाव बनाये रखते हैं।

इस बात का भी ध्यान रखें कि किसी ने हमें जीवन में 50 रुपये दिए उसका हम 500 रुपये देकर भी आभार चुका नहीं सकते; क्योंकि जिस समय हमें 50 रुपये की आवश्यकता थी, वह समय आप विचार करें और जिसने उस समय आपको 50 रुपये दिए हैं, उसकी परिस्थिति का भी ध्यान करें तो पता लगेगा कि उस परिस्थिति का मूल्यांकन करते हुए 500 रुपये तो क्या 5000 रुपये और 50,000 रुपये देने पर भी हम मूल्य नहीं चुका सकते।

जो व्यक्ति अपने माता-पिता के लिए कहते हैं कि - आपने क्या किया? गुरुजन को कह देते हैं, आपने क्या पढ़ाया? हमने पढ़ा है, ऑनलाइन पढ़ा है; गुरुजन तो नौकरी करते हैं, उनका इसमें क्या उपकार है या एक धन्यवाद देकर ऐसा मान लेते हैं कि हमने उपकार का मूल्य

चुका दिया, ऐसा कहने/माननेवाले कृतघ्न हैं।

हमारे आचार्य भगवंत लिखते हैं - 'न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति।' सज्जन कभी भी अपने ऊपर किए गए माता-पिता, गुरुजन व अन्य किसी के उपकार को कभी भी नहीं भूलते हैं। आभारी होना और कृतज्ञ होना किसी भी उपकारी के प्रति उऋण होने का सबसे सुलभ, सरल और सार्थक साधन है।

मित्रो! इस कृतज्ञता के गुण के द्वारा अर्थात् आभार प्रदर्शन का भाव रखते हुए आप सभी से सदा ही स्नेह पाते रहेंगे, इस गुण से सबके बीच आपका व्यक्तित्व अलग निखरेगा/चमकेगा।

10. कर्तृत्व के अहंकार से बचें (अहंकार के अनुस्वार का विसर्जन ही अहाकार (आनंददायक) हो सकता है) - सामाजिक जीवन में हम पारिवारिक दायित्व का निर्वहन करते हुए माता-पिता की सेवा, पुत्र-पुत्रियों का लालन-पालन, उनकी शिक्षा, भाई-बहन के विवाह आदि कार्य करने; व्यापारिक क्षेत्र में दुकान/फैक्ट्री/कार्यालय/शोरूम आदि का संचालन करने; सामाजिक कार्यों में संस्था, संगठन के द्वारा किए जाने वाले पारमार्थिक कार्यों व संस्था संचालन इत्यादि में सहयोग करने का जो भी दायित्व होता है, उसे करते हैं, यह सब कार्य किए जाने चाहिए - ऐसी प्रेरणा भी दी जाती है और तदनुसार कार्य करनेवालों की लोक में प्रशंसा भी की जाती है।

ऐसी स्थिति में अज्ञानता से मानव मन में एक बहुत बड़ा दोष उत्पन्न हो जाता है 'कर्तृत्व का अहंकार'। 'कर्तापने का अहंकार' हमारे द्वारा किए गए अच्छे कार्य को भी मलिन कर देता है, उसकी अच्छाई समाप्त कर देता है।

अनेक लोगों का तो इससे भी बढ़कर दोष होता है कि वे जो कार्य

नहीं करते हैं, अन्य के द्वारा किये गये हैं या जो कार्य सहजता से संपन्न हुये हैं; उन कार्यों के भी मार्गदर्शक/कर्ता/स्वप्न दृष्टा बनकर उन कार्यों के कर्तृत्व का अहंकार करके, निंदा के पात्र बनते हैं।

यह कर्तापने का अहंकार हमें अपनों से अलग/दूर कर देता है; क्योंकि अहंकारी व्यक्ति कभी भी यह नहीं चाहता कि उसके आसपास कोई रहे, उसके बराबर कोई रहे; यदि सभी बराबर होंगे तब फिर उसको कौन जानेगा? वह सबसे अलग हटकर दिखना चाहता है और इस चक्कर में वह अपनों से ही दूर हो जाता है।

इस कर्तृत्व के अहंकार से बचने के लिए हमें कुछ तथ्यों पर ध्यान रखना चाहिए -

1. व्यावहारिक दृष्टिकोण - 'एक कार्य होने में अनेक कारण होते हैं', अनेक सहयोगी होते हैं, हम अन्य सहयोगियों को निरर्थक समझकर मात्र अपने प्रयास को जब आगे रखना चाहते हैं तो कर्तृत्व का अहंकार हो जाता है। जबकि एक अच्छे परिवार/संस्था/समाज/संगठन के संचालक का दायित्व है कि 'स्वयं कार्य करते हुए भी श्रेय सभी को दें।' जैसा कि कहा भी है -

''मुखिया मुख सों चाहिए, खानपान को एक।
पालै पोसै सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।।''

आपने यह भी सुना ही होगा 'समय से पहले और भाग्य से अधिक कभी किसी को कुछ नहीं मिलता' तो जिस समय, जो मिलना था, उसी समय वही मिला है, जितना भाग्य में था, उतना ही मिला है, जो होना था, वही हुआ है तब फिर मैंने कुछ किया है? मैं कुछ कर सकता हूँ? मैं यदि नहीं करता तो यह कार्य नहीं होता? इस प्रकार के अहंकार को कहाँ स्थान है?

लोक में अनेक लोग गाते हैं – 'हुइ है वही जो राम रचि राखा' जो राम ने रचा है अर्थात् भगवान ने निश्चित किया है, वही होगा या कहते हैं 'जो हमारे भाग्य में है, वही होगा।'

तो चाहे – 1. भगवान की इच्छा के अनुसार हो रहा – ऐसा माना जाए या मानते हों; तो भी हमने किया, यह अहंकार करने योग्य नहीं है।

2. 'जो भाग्य में था वही हुआ है' यदि ऐसा विचार करते हैं; तो भी अहंकार करने के लिए स्थान नहीं रहता।

3. 'जो कार्य होना था, वही हुआ है' यदि ऐसा वस्तुस्वरूप स्वीकार करते हैं; तो भी अहंकार करने योग्य नहीं है।

जो व्यक्ति, परिवार और समाज में 'मैंने किया! मैंने किया!' के दायरे से बाहर निकलकर 'यह कार्य होना था सो हुआ' या व्यावहारिक दृष्टि से 'यह कार्य हमने किया'। इन भावनाओं को लेकर चलेगा वह सबका प्रिय हो जाएगा।

कर्तृत्व का अहंकार यश और स्नेह का नाशक है। जबकि कर्तृत्व के अहंकार से रहित व्यक्ति अपने स्नेह व सरलता के कारण अपने आसपास का वातावरण इतना मधुर–मृदुल व सहयोगी बना लेता है कि सारे ही लोग उसके नेतृत्व को स्वीकार करते हुए यही कहते हैं कि – हमारे संगठन/समाज या परिवार में कार्य करनेवाला एकमात्र यही व्यक्ति है; यह है तो हमारा कार्य हो रहा है। इस तरह से सहज में ही आदर व सम्मान की प्राप्ति होती है।

जो अहंकारी होता है, उसका पुण्य का उदय हो तो मुँह पर भले ही कोई कुछ न कहे लेकिन पीठ पीछे लोग यही कहेंगे – "भैया! धरती को उठाए रखनेवाले आ रहे हैं।"

"भाईसाहब! यह तो उस छिपकली के समान हैं, जो छत से चिपकी

हुई है और इसीलिए कहीं नहीं जा पा रही क्योंकि यह मानती है कि मैंने छत को टिका रखा है।''

इस तरह उस अहंकारी का मजाक बनाया जाता है। परिवार वाले भी उसे स्नेह नहीं देते; क्योंकि जब आप अपने भाई-पिता-पुत्र या भतीजे के द्वारा किए गए सहयोग को स्वीकार न करके केवल 'मैं' को ही आगे रखेंगे तो अन्य परिजन भी आपको स्नेह नहीं देंगे।

2. आध्यात्मिक दृष्टिकोण - सच में जगत का प्रत्येक कार्य अपनी-अपनी योग्यता से ही संपादित होता है। जब भी कोई कार्य होता है, उस समय कोई न कोई वहाँ पर अनुकूल भी होता ही है, जिसे निमित्त कहा जाता है।

हम स्वयं अनुभव करते हैं कि ऐसे कितने लोग होते हैं, जब उनके पास अनुभव, पूँजी, परिचय कुछ भी नहीं था, पर व्यापार प्रारंभ किया और दिन-दूना, रात-चौगुना बढ़ता चला गया; और ऐसे भी कितने लोग हैं, जिनके पास पूँजी-परिचय-अनुभव सब कुछ था, लेकिन उनका दिवाला निकल गया।

जब कुछ भी नहीं था तब कार्य क्यों हो गया? और जब सब कुछ था, तब क्यों खो गया? यह विचार करने योग्य है।

जब उन संयोगों की जुड़ने की योग्यता थी तो बिना परिचय-पूँजी-योग्यता के भी वह कार्य संपन्न हो गया और अब पाप का उदय आ गया या भाग्य विपरीत हो गया तो परिश्रम करते हुए, अनुभवी होते हुए भी सब कुछ नष्ट हो गया।

जब हम छोटे से बच्चे थे, हम अपना ध्यान नहीं रखते थे, खाने-पीने, सोने, खेलने-कूदने में मस्त रहते थे, गिरते-पड़ते रहते थे, माँ जो भी खिलाती-पिलाती हम आधा-अधूरा खा-पी करके भाग लेते थे तो

भी हमारा शरीर निरंतर वृद्धिंगत होता रहा, लंबाई बढ़ती रही, चौड़ाई बढ़ती रही, मोटाई बढ़ती रही; परंतु जब से हम अपने आपको होशियार समझ कर, इस शरीर और स्वास्थ्य का ध्यान रखने लगे, लंबाई बढ़ाने के लिए व्यायाम करने लगे, तभी से हमारी लंबाई, हमारा स्वास्थ्य हमारी इच्छा के अनुसार नहीं हो रहा है क्यों ?

क्योंकि वह कार्य होना था तो होता रहा और अब नहीं होना है तो हम हजारों कारण मिलायेंगे तो भी वह कार्य संपन्न नहीं होगा। हमारे सिर का एक बाल यदि काले से सफेद हो गया है तो हम उसे काला नहीं कर सकते। हमारी यदि बाईं आँख फड़क रही है, तो उसे हम दाईं की ओर नहीं बदल सकते। हमारे चेहरे पर अगर एक दाग बन रहा है तो उसे हम नहीं मिटा पाते। हम कितने भी प्रकार के औषधि और विटामिन्स का सेवन करें; लेकिन हम वृद्धावस्था से नहीं बच सकते।

सोचिये! किस बात का अहंकार ?

♦ हमने कुछ कार्य किया है ?

♦ क्या हम अपने बच्चों को अपने अनुसार कुछ बना सके हैं ?

♦ उन्हें अपने अनुसार चलाते रह सकते हैं ?

♦ आज जो कोरोना की बीमारी हो रही है, इसमें क्या कहीं ऐसा लग रहा है कि कोई कुछ कर पा रहा है ?

♦ हम अपने बच्चों को जो बनाना चाहते थे, बनाना चाहते हैं, क्या उसी तरह से बना पाते हैं ?

♦ क्या लोग जो भी सोचते हैं, वह कार्य होता है ?

नहीं! हमें वह कार्य करने के केवल विचार आते हैं, हम करना चाहते हैं यह अलग बात है, लेकिन हमारे करने से कार्य हुआ है; ऐसा मानना बहुत बड़ी अज्ञानता है। 'जिसमें जो योग्यता होती है वही कार्य संपन्न

होता है। जिसमें जो कार्य हो पाने की योग्यता नहीं है वह कार्य नहीं हो सकता।'

'जिस जीव का जन्म-मरण, लाभ-हानि, यश-अपयश, जब, जहाँ, जैसे, जिसके द्वारा होना, भगवान ने जाना है, उसे इन्द्र, अहमिन्द्र, जिनेन्द्र भी नहीं टाल सकते' इस परमार्थ सत्य की स्वीकृति ही शान्ति से निरहंकार/निर्भार जीवन जीने की कला है।

मित्रो! यदि आप अपने जीवन को निखारना चाहते हैं, तो यह कर्तृत्व का कीचड़ अपने जीवन से बाहर निकालने का प्रयास कीजिए।

ध्यान रखें यहाँ 'कर्तृत्व का त्याग करने के लिए कहा जा रहा है, कर्तव्य का त्याग करने के लिए नहीं'। प्रत्येक व्यक्ति जब तक वह परिवार/समाज/संस्थान/देश में रह रहा है और इन सबका लाभ ले रहा है, तब तक उनके प्रति कुछ कर्तव्य भी हैं, उन कर्तव्यों का पालन हमें पूरे उत्साह के साथ करना चाहिए; परन्तु उन कर्तव्यों को करते हुए कर्तृत्व का अहंकार नहीं होना चाहिए। हम अधिकार तो प्राप्त करना चाहें, पर कर्तव्यों का पालन न करना चाहें तो व्यवस्था नहीं बन सकती। 'अधिकार, हमेशा कर्तव्य की थैली में ही मिलते हैं।'

हम 'मैंने किया' के अहंकार से बाहर निकलकर पहले 'हमने किया' की व्यावहारिक दशा में आएँ और फिर 'कार्य किसी ने भी नहीं किया, होना था सो हुआ' के सत्य को स्वीकार करें, तो आप निर्भय-निर्भार रहकर प्रसन्न चित्त जीवन जी सकेंगे।

मित्रो! कर्तापने के अहंकार से रहित सहजता का जीवन जियें, सभी को साथ लेकर के चलें और कर्तापना छोड़कर, ज्ञातापना अर्थात् 'होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम ?' को स्वीकार करें तो हमारा लौकिक जीवन ही नहीं लोकोत्तर जीवन भी आनंदमय हो सकेगा।

○○○

(5)

छोड़ो हताशा/निराशा-रखो सफलता की आशा

''जिनके पास स्नेह एवं सेवा मनोभावरूपी दो मजबूत पंख हैं, वे जीवन की उन्नति पाते हैं।''

"Those who have two strong wings of affection and service, they get progress in their life." **- अज्ञात**

यह मनुष्य जीवन हमें बहुत ही दुर्लभता से प्राप्त हुआ है। इस जीवन में हमें श्रेष्ठ लौकिक और लोकोत्तर लक्ष्य निर्धारित कर उसे प्राप्त करना ही चाहिए; परन्तु हम नकारात्मक सोच, हताशा, निराशा से घिरकर अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाते हैं। इसीलिए कवि ने कहा है - 'नर हो न निराश करो मन को।'

चाहे लौकिक मार्ग हो या लोकोत्तर मार्ग, यदि हमारे विचारों में ऊर्जा है, उत्साह है, कुछ कर गुजरने की तमन्ना है, ऊँचे लक्ष्य को प्राप्त करने की भावना व प्रयास है तो निश्चित ही हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

'हम देखा-देखी व दिखावे के लिए अपना जीवन समर्पित न करें' दुनियाँ में 90 प्रतिशत लोग ऐसे हैं, जो अपने हृदय में कोई उमंग लेकर नहीं चलते हैं, वह किसी भी प्रकार की जोखिम लेने के लिए तैयार नहीं होते हैं, जो चल रहा है उसमें परिवर्तन करने के लिए उनका साहस नहीं होता, इसीलिए न वे लौकिक मार्ग में उन्नति कर पाते हैं और न ही पारंपरिक धार्मिक/आध्यात्मिक विचारधारा में परिवर्तन कर पाते हैं, जिसके कारण वे आगे नहीं बढ़ पाते हैं, अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाते, फलतः निराश/हताश हो जाते हैं।

कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दु हमें अपने उच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए

ध्यान रखना आवश्यक हैं –

1. निरंतर कठोर परिश्रम, सकारात्मक सोच, ऊँचे स्वप्न व पवित्र संकल्पों से ही व्यक्ति महानता के शिखर पर पहुँचता है।

जो व्यक्ति परिश्रम से नहीं डरता, परिश्रम को अपनी पूँजी समझता है, हमेशा ही 'कार्य हो करके ही रहेगा' ऐसी जिसकी सोच है, जिसने उन्नत शिखर पर पहुँचना अपना लक्ष्य निर्धारित किया है और पवित्र संकल्प मन में है कि मैं अपने शुद्ध साधनों के द्वारा शुद्ध लक्ष्य को प्राप्त कर लूँगा, जिसके हृदय में किसी को नीचे गिराने-हराने-दुःखी करने की भावना नहीं है, वह इस पवित्र संकल्प से उन्नति के शिखर पर पहुँचता है।

इन गुणों से संयुक्त व्यक्ति चाहे राजनीति में हो, व्यापार में हो, किसी सेवा में हो अथवा धर्म प्राप्ति के मार्ग में हो वह निश्चित ही अपने लक्ष्य को प्राप्त करेगा। जो उद्यमी पुरुष होते हैं, भाग्य भी उनका ही साथ देता है; क्योंकि कोई भी कार्य होने में पाँच कारण मुख्य होते हैं – स्वभाव, पुरुषार्थ, काललब्धि, भवितव्यता और निमित्त। जिसका जिस दिशा में सहज उग्र पुरुषार्थ चल रहा है, इसका अर्थ है कि उसकी काललब्धि व भवितव्यता भी वही होने वाली है, निमित्त भी अनुकूल मिलेंगे ही मिलेंगे।

2. व्यक्ति बड़े घर में पैदा होकर नहीं, अपितु अपने पुरुषार्थ, संघर्ष, समर्पण, स्वाभिमान एवं कर्म से महान बनता है।

हमारे देश में अनेक महापुरुष हुए हैं, जिनको हम आज भी ससम्मान याद करते हैं – महात्मा गाँधी, बाल गंगाधर तिलक, डॉक्टर अंबेडकर, हमारे राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, डॉ. राधाकृष्णन, डॉ. अब्दुल कलाम आजाद ये सभी वे नाम हैं, जिन्होंने अपने पुरुषार्थ, संघर्ष, समर्पण व स्वाभिमान से भारत के रत्न के रूप में अपने आपको स्थापित किया है।

लोकोत्तर मार्ग में भी जिन्होंने ब्राह्मण या क्षत्रिय जाति के सामान्य

परिवारों में भी जन्म लिया उन्होंने भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त कर 100-100 इंद्र जिनको नमन करें - ऐसे तीर्थंकर और गणधरदेव जैसे पद प्राप्त किए। वर्तमान में भी अनेक त्यागी, विद्वान, लेखक, प्रचारक ऐसे हैं, जिन्होंने किसी बड़े खानदानी परिवार में जन्म नहीं लिया, जिनके परिवार में कोई विद्वान नहीं हुए, लेकिन उन्होंने अपने परिश्रम से योग्यता अर्जित कर समाज को दिशा-निर्देशन किया जैसे श्री गणेश-प्रसादजी वर्णी, ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी आदि।

3. सपनों को हकीकत में बदलने के लिए निरंतर कठोर परिश्रम करना पड़ता है।

अच्छे सपने देखना बहुत अच्छी बात है, लेकिन सपने ही देखते रहना अपने जीवन को अंधकार में ले जाने जैसा है। हमने जो सपने देखे हैं, उनको सार्थक करने हेतु कठोर परिश्रम करने के लिए भी हमें सदैव उत्साहपूर्वक तैयार रहना चाहिए। सुभाषितकार ने कहा है -

उद्यमेन ही सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशंति मुखे मृगाः।।

उद्यम/परिश्रम से ही कार्यसिद्ध होते हैं, मात्र कल्पना करने, सपना देखने से कार्य सिद्ध नहीं होते। जो जंगल का राजा सिंह है, उसके मुँह में भी स्वयं चलकर हिरण आदि पशु नहीं आते। सिंह को भी अपने भोजन के लिए परिश्रम करना होता है।

मित्रो! मेहनत से न डरें। जो परिश्रम करने से डर गया, समझो लक्ष्य पाने से पहले ही मर गया। यदि लक्ष्य ऊँचा बनाया है तो उस उन्नत शिखर पर चढ़ने के लिए हमारे फेफड़ों में श्वांस भरने की भी पूरी क्षमता होनी ही चाहिए, तभी हम उस उन्नत शिखर पर पहुँच सकते हैं।

जिन विद्यार्थियों ने बोर्ड या विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त किया है, वह किसी भाग्य के भरोसे या आशीर्वाद से नहीं बल्कि कठोर परिश्रम से ही प्राप्त किया है।

माननीय मोदीजी जो अभी यशस्वी प्रधानमंत्री हैं, उन्होंने यह पद किसी के द्वारा दिया हुआ प्राप्त नहीं किया है, बल्कि अपने परिश्रम-लगन व समर्पण के बलबूते पर प्राप्त किया है।

जो उद्योग में देश में प्रथम स्थान पर है ऐसे अंबानी परिवार, अडानी परिवार वह भी अपनी निरंतर की सक्रियता व परिश्रम के कारण उन स्थानों तक पहुँचे हैं।

जो प्रशासनिक सेवाओं में चयनित होते हैं, वह किसी की आरती उतारने या नारियल फोड़ने के कारण से नहीं, अपितु रात-दिन के परिश्रम से उस पद को प्राप्त करते हैं।

मित्रो! परिश्रम का कोई दूसरा विकल्प नहीं है। यदि कुछ बनना है, कुछ पाना है तो परिश्रम करना ही होगा। जैसा लक्ष्य, वैसा परिश्रम/वैसा ही पुरुषार्थ हमारा हो तो मंजिल तो आपके कदमों के नीचे होगी।

आप यदि मोक्षमार्ग में चलना चाहते हैं तो भी आपको परिश्रम करना होगा पर परिश्रम का स्वरूप अलग होगा। बाह्य उन्नति के लिए परिश्रम फैलना है, तो मोक्षमार्ग में सिमटना है। पर से हटकर अपने नजदीक आना यही पुरुषार्थ है। कुछ नहीं करना, मात्र ज्ञाता-दृष्टा रहना ही पुरुषार्थ है। सच में यही पुरुषार्थ है, अन्य जो कहा जाता है वह तो प्रेरणा मात्र है।

मोक्षमार्ग की प्राप्ति का प्रारंभिक उपाय तत्त्वज्ञान/तत्त्व विचार है। तत्त्वज्ञान/तत्त्वप्रचार के लिए पूरा समर्पण अत्यावश्यक है। "जब तक जिस प्रकार पर्याय में अपनत्व बुद्धि है, उसी प्रकार आत्मा में अपनत्वबुद्धि

ना आ जाए, तब तक हमें तत्त्व विचार करते रहना चाहिए – यही हमारा पुरुषार्थ है।''

ऐसा पुरुषार्थ/उद्यम करते हुए भी यदि कार्य की सिद्धि नहीं होती है तो नीतिकार कहते हैं – **'यत्ने कृते न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः ?'**

इस सूक्ति के दो प्रकार से अर्थ किए जाते हैं –

1. यत्न अर्थात् परिश्रम, पुरुषार्थ करने पर भी यदि कार्य सिद्ध नहीं हुआ है तो इसमें हमारा क्या दोष है ? अर्थात् हमारा कोई दोष नहीं है। शायद हमारी पर्याय में अभी वह कार्य होने की योग्यता ही नहीं है।

जैसे विद्यार्थी विद्यालय जाता है, गृहकार्य करता है, याद करता है, पढ़ाई करता है फिर भी प्रथम स्थान को प्राप्त नहीं कर पाता या व्यापारी प्रतिदिन नियमित समय पर बाजार जाता है, दुकान खोलता है, ग्राहकों से योग्य व्यवहार करता है, फिर भी वांछित लाभ नहीं होता है, राजनेता चुनाव में खड़ा होता है मतदाताओं से सब व्यवहार करता है, जनसंपर्क करता है; फिर भी यदि विजेता नहीं होता है, तब यही कहा जाएगा कि अब हम और क्या करें ? हमारी प्रथम स्थान आने या धन लाभ प्राप्त करने या चुनाव में जीतने की योग्यता, होनहार, भवितव्यता ही नहीं थी।

हम आगमानुसार तत्त्वविचार कर रहे हैं, स्वाध्याय करते हैं, चिंतन करते हैं; पर सम्यग्दर्शन नहीं हुआ तो अब हमारा इसमें क्या दोष है, हम और क्या कर सकते हैं ? अभी हमारी श्रद्धा गुण की पर्याय के निर्मल होने की काललब्धि नहीं आयी है, यही विचार करना चाहिए।

2. इसी का दूसरा अर्थ मनीषी करते हैं कि – इतना यत्न करने पर भी यदि कार्य की सिद्धि नहीं हुई तो विचार करना चाहिए कि अभी इसमें और क्या दोष ? क्या कमी रह गई है ?

क्यों ?

क्योंकि यदि पूरा कारण हमने दिया होता तो कार्य होना ही चाहिए। 'सच्चा/पूरा कारण मिल जाए और कार्य न हो ऐसा हो ही नहीं सकता।' निश्चित ही हमारे कार्य करने में कुछ दोष रह गया, कोई कमी रह गई है, उसका अनुशीलन हमें गुरुजनों के पास जाकर अर्थात् जो जिस क्षेत्र के विशेषज्ञ हैं, उनके नजदीक जाकर; अपनी कार्यपद्धति बतलाते हुए, उसमें क्या दोष रह गया है, यह जानने/समझने का पुरुषार्थ करना चाहिए; वे निश्चित ही हमारी चिंतनधारा, हमारी कार्यपद्धति को देखकर समझेंगे और बताएँगे कि हमारे कार्य करने अथवा समझने में कहाँ क्या दोष है। यही हमारी उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ने की कला है।

4. 'भोग-विलास एवं मौजमस्ती जीवन का उद्देश्य नहीं, अपितु चरित्रवान/बलवान एवं विद्वान बनकर अपने समाज व देश के लिए कुछ करके जाना यही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।'

वर्तमान में सभी की मानसिकता भोग प्रधान होती जा रही है। कैसे भी भोग सामग्री प्राप्त करना ? मेहनत करके पैसा कमाना और मौजमस्ती के कार्यों में उस पैसे को उड़ाना। हमारी यही सोच रहती है। आज जितने भी उत्पादन हैं, वे तन-मन-धन व धर्म को नष्ट करने वाले हैं, परन्तु उनकी पैकिंग का आकर्षण इतना जबरदस्त होता है, उनका विज्ञापन इतना मनमोहक होता है कि जिसे देखकर हम सब उन वस्तुओं का उपयोग करना चाहते हैं। चाहे वे खाने-पीने, पहनने, घूमने-फिरने, शृंगार आदि के साधन हों उनकी प्राप्ति में ही हम अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं।

जो भोग, विलास वर्तमान में तन-मन-धन को बिगाड़ने वाले हैं एवं पाप का कारण होने से अनंत भविष्य को बिगाड़ने वाले हैं, हम उनसे बचने एवं अपने उन्नत चरित्र का निर्माण करने की मानसिकता के साथ जीवन जियें।

मित्रों ! हमारे जीवन का उद्देश्य मौजमस्ती नहीं, बल्कि एक बलवान/चरित्रवान/सुयोग्य नागरिक बनना है और इसके लिए सत्साहित्य का अध्येता बनना आवश्यक है। सुभाषितकार ने कहा भी है –

''राष्ट्रं समाजतः सिद्ध्येत समाजो व्यक्तिभिस्तथा।
व्यक्तिः चरित्रतः सिद्ध्येत् चरित्रं तूच्च शिक्षया।।''

''राष्ट्र का निर्माण समाज से, समाज का निर्माण व्यक्ति से, व्यक्ति का निर्माण चरित्र से और चरित्र का निर्माण उच्च शिक्षा से होता है।''

उच्च शिक्षा का अर्थ डिग्रियाँ नहीं है, उच्च शिक्षा का अर्थ जो हमारे चरित्र का निर्माण करे, जो देश व समाज के लिए कुछ करने के लिए प्रेरित करे, जो अपने पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन करने के लिए प्रेरित करे और जो धर्म के मार्ग पर चलते हुए आत्मोन्नति करने के लिए प्रेरित करे वही उच्च शिक्षा है।

5. 'कभी भी निराश, हताश, उदास नहीं होना चाहिए; क्योंकि हारने वाला व्यक्ति ही जीतता है, प्रतिकूलता से ही प्रतिभा उभरती है, अंधेरे के बाद ही प्रकाश होता है, पतझड़ के बाद ही बसंत का आगमन होता है।'

हम जो भी कार्य करते हैं, उसमें असफल होना भी एक सहज प्रक्रिया है। हम वाहन चलाते हैं, उस समय दुर्घटना हो सकती है; व्यापार में घाटा लग सकता है; नौकरी करते हैं तो हमारी नापसंद जगह पर ट्रांसफर हो सकता है; परिवार में रहते हैं तो मतभेद हो सकते हैं; विद्यार्थी परीक्षा देता है तो असफल हो सकता है; किसी भी खेलकूद या मानसिक प्रतियोगिता में असफल हो सकता है; ऐसा होना ही चाहिए ऐसा नियम नहीं है; परंतु यह सब कार्य करते हुए यह सब हो सकता है अतः हम इन असफलताओं से घबराएँ नहीं, निराश न हों, हताश न हों कि अब मेरे द्वारा कुछ नहीं हो सकता। कवि नीरज लिखते हैं –

'कुछ सपनों के मर जाने से जीवन नहीं मरा करता है।'

♦ चींटी 100 बार दीवाल पर चढ़ती है, फिसलती है, गिरती है, लेकिन अंततः वह ऊपर पहुँच ही जाती है।

♦ मोहम्मद गौरी 17 बार पराजित होने के बाद भी प्रयास नहीं छोड़ता और जीत जाता है।

♦ हर व्यापारी पहली बार में ही सफल हो जाता हो - ऐसा नहीं है।

♦ आईआईटी या भारतीय प्रशासनिक सेवा में भी एक बार में ही सभी निकल जाते हैं - ऐसा नहीं है।

♦ लेकिन जो प्रयास करते रहते हैं, वे अवश्य ही सफल होते हैं।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए भी पूरा जीवन भी लग सकता है और इस भव में न हो ऐसा भी हो सकता है। पण्डित टोडरमलजी ने स्वयं लिखा है कि 'जो तत्त्व विचारवाला जीव है, उसे यदि इस भव में नहीं तो अगले भव में अवश्य सम्यग्दर्शन होगा।' इसका अर्थ हमने आज ही प्रयास किया और हमें सफलता मिल ही जाएगी - ऐसा नहीं है और एक बार सफल हो गए हैं तो नीचे नहीं आ सकते ऐसा भी नहीं है। हमारा आगम तो कहता है 11वें गुणस्थान से गिरकर पहले गुणस्थान में भी आ सकते हैं। इसलिए किसी भी परिस्थिति में हताश नहीं होना/उदास नहीं होना/निराश नहीं होना।

जो आज रोगी है, वही नीरोगी होगा। जो दुःखी है, वही सुखी होगा। जो अज्ञानी है, वही ज्ञानी होनेवाला है। हम भी आज संसार अवस्था में हैं; हम ही मोक्ष अवस्था की ओर जाएँगे, इसलिए हम यदि मानसिक रूप से सुदृढ़ हैं तो हमें कोई भी परिस्थिति, किसी भी प्रकार की प्रतिकूलता परेशान नहीं कर सकती। जो विचारों से कमजोर होते हैं, उनके पास बहुत कुछ साधन होते हुए भी एक छोटी-सी प्रतिकूलता

निराशा के गर्त में धकेल देती है, जहाँ से निकलना बहुत ही कठिन हो जाता है।

जीवन निखारने के विचार, वाणी और कर्म इन तीन प्रमुख बिंदुओं में से 'विचार' प्रकरण के अंत में कहना चाहूँगा –

'सदा प्रसन्नता–ऊर्जा–उत्साह व स्वाभिमान रखते हुए आगे बढ़ना, बाधाओं से नहीं घबराना, क्योंकि मनुष्य में असंभव (लगने वाले कार्य) को भी संभव करने की अपार क्षमता है।'

हम इस दु:खद पंचमकाल में भी मोक्षमार्ग को प्रकट करने की क्षमता रखते हैं, हमारा स्वभाव ही अनंत वैभव संपन्न है, अनंत शक्तियाँ हमारे अंदर ही विद्यमान हैं, उन शक्तियों को पहचानना है, शक्तियाँ कहीं से लाना नहीं है, मोक्ष या मोक्षमार्ग कहीं से लाना नहीं है, किसी के आशीर्वाद, दया की आवश्यकता नहीं है, दूसरों की ओर देखने की जरूरत ही नहीं है, मात्र अपनी सामर्थ्य को पहचानना है, उसे प्रकट करना है और यह कार्य हम अभी कर सकते हैं।

जो जीव मूंगफली छीलकर खा सकता है, गन्ना चूस कर रसास्वादन कर सकता है, दूध में से मावा या घी की पहचान कर सकता है (इसका अर्थ है कि उसे इतना विवेक है कि क्या ग्रहण करने लायक है) और क्या त्याग करने लायक है, वह इस देह में रहते हुए देह से भिन्न आत्मा की भी पहचान कर सकता है। मात्र उस पदार्थ अर्थात् आत्मा का लक्षण जो ज्ञान है, उसकी सच्ची पहचान आवश्यक है। लक्षण की पहचान होते ही लक्ष्य की प्राप्ति होती है; क्योंकि लक्षण और लक्ष्य भिन्न-भिन्न नहीं हैं।

OOO

(6)

वाणी कर्म कृपाणी

''अंधेरे के परिचय के बिना उजाले की कीमत का पता नहीं चलता। उसी प्रकार समस्याओं का सामना करने से ही वास्तविक सुख का एहसास होता है। इसीलिए कष्ट से सुख पाना चाहिए।''

"Without the introduction of darkness, the value of the light can not be known, the same way by facing the problems only the real happiness can be felt. So happiness must be get by facing difficulties." – अज्ञात

खुल सकती हैं गाँठे, बस जरा जतन से।
मगर लोग कैंचियाँ चलाकर, फँसाना ही बदल देते हैं।।

हम अपने विचार, वाणी व कर्म को निहार कर उनमें जो भी दोष पाए जाएँ, उनको दूर कर जीवन को निखार सकते हैं।

अभी तक हमने हमारे विचारों में क्या निखार आना चाहिए, जिससे कि हमारा व्यक्तित्व आकर्षक हो सके इस संबंध में चर्चा की। अब हम 'वाणी' के संबंध में यहाँ विचार करेंगे।

एक कहावत आती है – **'बातन हाथी पाइए, बातन हाथी पाँव।'**

व्यक्ति की वाणी में वह शक्ति है कि यदि वह विनम्रता–सरलता–स्पष्टता के साथ अपनी बात रखता है तो लोग प्रसन्न होकर हाथी जैसा इनाम भी दे सकते हैं और बातों में ही वह जहर भी भरा हुआ है कि यदि आप क्रूरता–कर्कशता–अहंकार सहित बातों का प्रयोग करेंगे तो हाथी के पैर के नीचे दबाने जैसा दंड भी प्राप्त हो सकता है।

एक अन्य कहावत भी आती है कि 'गोली का घाव तो भर जाता है परंतु बोली का घाव नहीं भरता।'

बोली का घाव हमें दिखता नहीं है लेकिन वह हृदय में इतने अंदर

तक जाता है कि वर्षों बाद उस व्यक्ति से मित्रता होने के बाद भी वह बात बार-बार याद आती है और परेशान करती है, इसलिए हमें हमेशा ही अपनी वाणी पर नियंत्रण रखते हुए ही बात करना चाहिए।

''ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय।।''

कब बोलना ? कहाँ बोलना ? कैसे बोलना ? किससे बोलना ? इन सब बातों का ध्यान रखकर यदि हम बात करेंगे तो निश्चित ही हमारा व्यक्तित्व आकर्षक होगा।

1. स्व-पर हितकारक/कल्याणकारक/सुखद वाणी का प्रयोग करें।

2. हम बुद्धिपूर्वक कम बोलने का प्रयास करें। बहुत से लोग होते हैं जो जहाँ चाहे, अनावश्यक रूप से बोलते रहते हैं। जो बात 2 वाक्यों में कही जा सकती थी, उसे 5 मिनट तक समझाते रहते हैं, यह अच्छा नहीं है। हम अपनी बात को सरलता से संक्षेप में प्रस्तुत करने की आदत बनायें।

3. हितकारक और कम बोलते हुए भी ध्यान रखें कि जिन शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है वे शब्द प्रिय हैं या नहीं ? प्रिय वाणी से सभी संतुष्ट होते हैं। सुभाषितकार कहते हैं -

''प्रियवाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात् तदेव वक्तव्यं, वचने का दरिद्रता ?''

प्रिय वाणी बोलने से पशु भी प्रसन्न हो जाते हैं, मनुष्य की तो क्या बात है ? प्रेम पूर्वक बोलने से गाय-भैंस-कुत्ता इत्यादि पालतू पशु ही नहीं यहाँ तक कि जो हिंसक पशु कहे गए हैं, वे भी वाणी के प्रभाव में आए बिना नहीं रहते।

दीवान अमरचंदजी सिंह के पास जाकर प्रीतिपूर्वक बात करते हैं कि - 'हे सिंहराज ! मैं आपको मांसाहार नहीं करा सकता। आप यदि यह

जलेबियाँ खाकर अपनी उदर पूर्ति करना चाहें, तो कीजिए अथवा आप मेरा ही भोजन कर लीजिए।'

उनकी सरल एवं मधुर वाणी को सुनकर वह वनराज भी प्रभावित हो गया और जो सामान्यतया उसका भोजन नहीं है – ऐसी जलेबियों का उसने भोजन कर लिया।

दूसरी ओर कटाक्ष के वचनों से महाभारत जैसा युद्ध हुआ। आपने सुना ही होगा कि द्रोपदी के – 'अंधे के पुत्र, अंधे ही होंगे' ये जो चुभते हुए वचन थे, इन वचनों ने ही महाभारत का युद्ध करा दिया। ऐसे चुभते हुए वचनों से आज घर–घर में, समाज में महाभारत होती हुई कहीं पर भी देखी जा सकती है।

एक कहानी आती है कि अंधे व्यक्ति ने भी बात करने के तरीके से राजा, मंत्री, सेनापति आदि को पहचान लिया।

4. बहुत से भाई सत्य बोलने के नाम पर कटु बोलते हैं। वह सभी के समक्ष इस तरह से बात करेंगे कि 'हम तो भाई सत्य बोलते हैं/स्पष्ट बोलते हैं, आपको बुरा लगे तो लगे ?'

सत्य बोलना अच्छी बात है; लेकिन वही बात यदि किसी को अपमानित करने के लिए, कटु शब्दों में, निंदा–कटाक्ष के लहजे में कही जाती है तो निश्चित ही बुरी लगने वाली होती है। यदि वही सत्य बात हम प्रेम की चासनी में भिगोकर, मधुर शब्दों से प्रस्तुत करें तो किसी को बुरी क्यों लगेगी ?

5. 'सत्य बोलने से पहले सत्य समझना आवश्यक है।' सत्य को जाने बिना सत्य कहा नहीं जा सकता, केवल जो हमें दिखता है या जो हम जानते हैं, उसे नहीं कहना ही असत्य नहीं है; हमारे मनीषियों ने असत्य चार प्रकार के बतलाये हैं –

1. सत् का अपलाप – सत् अर्थात् है, अपलाप अर्थात् ढँकना/छिपाना/निषेध करना। जो वस्तु, व्यक्ति है, जो कार्य हुआ है उसे मना करना, उसका निषेध करना वह सत् का अपलाप कहलाता है।

हम घर में रहते हुए कह देते हैं; पापाजी घर पर नहीं हैं। जेब में पैसे होते हुए कह देते हैं, मेरे पास पैसे नहीं हैं। किसी कार्य को करने की हम में शक्ति है, लेकिन कह देते हैं, मैं नहीं कर सकता, यह झूठ का प्रथम प्रकार है।

2. असत् का उद्भावन – असत् अर्थात् जो नहीं है, उद्भावन अर्थात् प्रकट करना। जो व्यक्ति–वस्तु–घटना–कार्य–बात नहीं है; फिर भी हम कह रहे हैं कि ऐसा हुआ, वह वहाँ पर है, उन्होंने ऐसा किया, जो कार्य हुआ नहीं है, उसे किया हुआ कहना वह असत् का उद्भावन नाम का असत्य है।

3. अन्यथा प्ररूपण – जो वस्तुस्वरूप जैसा है, उसे वैसा न कहकर, अन्य प्रकार से कहना वह अन्यथा प्ररूपण कहलाता है। जैसे – वीतरागी, निर्दोष परमात्मा होते हैं; लेकिन उन्हें रागी–द्वेषी, कर्ता सिद्ध करना। वीतरागता में धर्म होता है; परंतु राग में धर्म समझाना। अहिंसा में धर्म है, उसके स्थान पर हिंसा में धर्म बतलाना। अंधविश्वासों की प्रेरणा करना, कुरीतियाँ–कुनीतियाँ चलाना यह सब अन्यथा प्ररूपण कहलाएगा।

जिनका थोड़ा पुण्य का उदय हो तो वे जो कहते हैं, उसको मानने के लिए अनेक लोग तैयार हो जाते हैं। वे इस पुण्य की चकाचौंध में यह भूल जाते हैं कि आगम विरुद्ध/परंपरा विरुद्ध/संस्कृति विरुद्ध बात कहकर लोगों को गलत रास्ते पर तो नहीं ले जा रहे हैं? 'आपके अनुयायी कितने हैं? यह आपकी सत्यता को निर्धारित नहीं करेगा; परंतु आप किस के अनुयायी हैं? आप किसके अनुसार प्ररूपण कर रहे हैं?

इससे आपकी बात सत्य या असत्य कहलाएगी' इसलिए हमारे द्वारा कभी भी अन्यथा प्ररूपण न हो।

4. गर्हित वचन - निंदा कारक/कलह कारक/अपमान कारक/ अपशब्दों का प्रयोग गर्हित वचन नामक असत्य कहलाता है।

मनुष्य का एक यह मनोरोग है कि उसे दूसरों की निंदा करने में बड़ा रस आता है, किसी का अपयश फैल जाए इसको देख/सुन करके उसे बहुत शांति की प्राप्ति होती है; इसलिए वह लोगों को घर पर बुलाकर, चाय-नाश्ता कराकर, दूसरों की निंदा का रसपान कराता है, यह दोष है, इसका हमें परिमार्जन करना चाहिए।

यदि हम कोई सत्य बात भी दूसरे की निंदा करने के लिए/अपमानित करने के लिए कहते हैं, तो वह भी असत्य ही कहलाएगा।

हमारे मन में प्रश्न हो सकता है कि जब हम सत्य कह रहे हैं तो वह असत्य क्यों है ? जैसे - किसी ने चोरी की है और हम कह रहे हैं कि उसने चोरी की; किसी ने झूठ बोला है और हम कह रहे हैं कि उसने झूठ बोला; किसी ने कोई गलत कार्य किया है और हम दूसरों के सामने कह रहे हैं कि उसने यह गलत कार्य किया; तो इसमें झूठ कहाँ हुआ ?

जिनवाणी कहती है कि जो घटना घटित हुई है, वह घटना तो सत्य हो सकती है; परंतु आपका अभिप्राय सही नहीं है। आप उसके दोष दूर करने की भावना नहीं रखते हैं। आप उसके दोष बतला कर उसे अपमानित करना चाहते हैं और यही गलत अभिप्राय होना झूठ है।

हम दो लोगों में इधर-उधर की बात करके विसंवाद करा देते हैं, कलह करा देते हैं और आनंद मानते हैं, हमें लगता है हमने इसमें क्या झूठ बोला ? परंतु भाई ! दूसरों के बीच कलह कराने की भावना से आपने सत्य बात भी कही है तो भी वह झूठ है।

अश्लील शब्दों/अपशब्दों का प्रयोग भी असत्य की श्रेणी में रखा

गया है। इसीलिए द्यानतरायजी ने दशलक्षण पूजन में लिखा है –

कठिन वचन मत बोल, पर निंदा अरु झूठ तज।
साँच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी।।

जो कठिन वचन नहीं बोले, दूसरों की निंदा न करे, चार प्रकार के जो असत्य हैं उनसे बचे और सत्य रूपी जवाहर अर्थात् रत्न को अपने हृदय में रखता हो, ऐसा सत्यवादी जीव सबका प्रिय होगा; सब उसे पसंद करेंगे; इसलिए वह इस लोक में सुखी रहेगा, कभी भी उसका चित्त अशांत नहीं होगा, तनाव में नहीं होगा; इसलिए हमें अपनी वाणी पर नियंत्रण रखना चाहिए और सत्य बोलने से, पहले सत्य को भलीभाँति समझना चाहिए।

6. '**दीनतापूर्ण वचनों से बचें।**' अगर हम दीन बनकर के सभी के समक्ष रहेंगे तो कोई हमारा सहयोग करने वाला तो है नहीं; परंतु हम बहुत लालची हैं, दीन हैं, चापलूसी करते हैं इत्यादि प्रकार से हमारा ही अपमान करने लगेंगे; इसलिए दीनता भरे वचन भी नहीं बोलना चाहिए।

7. '**अहंकार के वचनों से भी बचना चाहिए।**' अनेक लोगों की अपने कर्तृत्व के बखान करने की आदत होती है – 'मैंने यह किया, मैंने वह किया, मैंने ऐसा कहा, मैंने सोचा', इस बात में मैं कहता हूँ। यहाँ तक कि जिनवाणी की बात करते हुए भी उनके मुँह से यही निकलता है कि 'मैं ऐसा कहता हूँ' 'मैंने ऐसा कहा' यह जो 'मैं' सामने आकर खड़ा होता है, यही अहंकार की भाषा है।

जिनवाणी के वचनों में तो हमारे मुँह से यह निकलना ही नहीं चाहिए कि 'मैंने कहा'। भगवान ने कहा, आचार्यों ने कहा, जिनवाणी माँ कहती है इन शब्दों का ही प्रयोग हमारे द्वारा होना चाहिए। लौकिक में भी चाहे परिवार या समाज या संस्था हो तो वहाँ पर भी 'मैं' के स्थान पर यदि 'हम' का प्रयोग करेंगे – 'हमने यह किया है, हम ऐसा सोचते

हैं, हम सब मिल कर यह कार्य करें' इत्यादि। हमारी भावना भी ऐसी हो और वाणी भी हो तो सोने पर सुहागे का काम होगा और हम जन-जन के प्रिय बन सकेंगे।

वाणी मनुष्यगति का एक अनुपम उपहार है। तिर्यंचगति में दो इंद्रिय जीवों से लेकर मन सहित पाँच इंद्रिय जीवों तक (चींटी, मक्खी, मच्छर, तितली, सांप, गाय, कुत्ता, बिल्ली, चूहा, शेर, हिरण, हाथी, कोयल, मोर इत्यादि) को रसना इंद्रिय की प्राप्ति है, इसलिए उनके भाषा भी होती है; परंतु जिस प्रकार की वाणी का प्रयोग मनुष्य कर सकता है उस प्रकार से पशु वाणी का प्रयोग करने में असमर्थ हैं।

जिस अक्षरात्मक भाषा का प्रयोग हमें करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उससे हम सुख-दुःख, प्रशंसा आदि अपने हृदय में उत्पन्न अनुभवों/विचारों को हजारों लोगों तक पहुँचा सकते हैं, सबको अपना प्रिय बना सकते हैं, अपना अनुयायी बना सकते हैं। और इसी वाणी का दुरुपयोग करके हम अपने परिजनों को भी अपना शत्रु बना सकते हैं।

'वाणी या भाषा, हमारे विचारों की वाहक है' हमारे जो श्रेष्ठ विचार हैं, उनको हम अपनी श्रेष्ठ भाषा के द्वारा दूसरों तक पहुँचा सकते हैं। व्यक्ति अपने परिमार्जित विचारों को यदि उत्कृष्ट वाणी के द्वारा दूसरों तक पहुँचाने में सक्षम हो गया, उसे यदि वाणी का श्रेष्ठ वाहन प्राप्त हो गया तो समझ लीजिए कि वह समाज और देश का एक सर्व प्रिय व्यक्ति, अजातशत्रु के रूप में जाना जाएगा।

कोई कितना भी सुंदर/धनवान/बलवान हो; परंतु यदि उसके पास योग्य भाषा नहीं है, जिसके द्वारा वह अपने विचारों का संप्रेषण कर सके, तो समझ लीजिए उसका कहीं सम्मान होने वाला नहीं है, यहाँ तक कि अनेक धनवान/बलवान अपनी खोटी वाणी के कारण, अपयश के ही पात्र बनते हैं। इसीलिए नीति-शतक में कहा है -

केयूराः न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चंद्रोज्ज्वलाः।
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्धजाः।।
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते।
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणम् भूषणम्।।

बाजूबंद, उज्ज्वल धवल सुंदर हार, स्नान, चंदन आदि का लेपन अर्थात् क्रीम-पाउडर आदि लगाना, सुगंधित पुष्पों से चोटी को सजाना इससे पुरुष अलंकृत नहीं होता है; शोभायमान नहीं होता है; बल्कि एक सुसंस्कृत वाणी के द्वारा ही व्यक्ति शोभायमान होता है; क्योंकि अन्य सभी आभूषण तो धीरे-धीरे क्षीण हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं परंतु वाणीरूपी आभूषण कभी नष्ट नहीं होता।

हम लोगों को अपने वश में करने अर्थात् अपना बनाने की कला सीखें। वह कला विनम्रता-सरलता एवं सभी को प्रिय लगने वाली वाणी ही है।

बोली एक अमोल है, जो कोई बोले जानि।
हिदे तराजू तौल के, तब मुख बाहर आनि।।

'बोली बहुत अनमोल है, हम हृदय की तराजू पर तौल कर ही वाणी को मुँह से बाहर निकालें, तो प्रिय वक्ता बन सकेंगे।'

प्रकृति ने भी देखिए हमारी जीभ को अत्यंत कोमल बनाया है। 32 दाँतों के बीच उसे सुरक्षित रखा है कि इसकी सुरक्षा करते हुए हम कोमल वचनों का प्रयोग करें। कर्कश वचनों का प्रयोग न करें। जीभ जैसे सीधी सरल है, वैसे ही सरल शब्दों का प्रयोग करें। टेढ़े, छल भरे वचनों का प्रयोग न करें। हम झूठ बोल कर, किसी की मायाचारी से प्रशंसा करके, कुछ देर के लिए काम कराने में सक्षम हो सकते हैं; परंतु हम दीर्घकाल तक किसी के हृदय में अपना स्थान नहीं बना सकते।

जबान हड्डी रहित कोमल है, वह हमें यही शिक्षा दे रही है कि इनसे आप कोमल शब्दों का ही प्रयोग करें। किसी को भी – ''मैं मार डालूँगा, काट दूँगा, गला दबा दूँगा, माथा फोड़ दूँगा, अबे, यहाँ से भाग जा, मेरी आँखों के सामने से हट जा, तू गधा है, बेवकूफ है, नालायक है, तेरे माता–पिता ने कुछ नहीं सिखाया, यह तो भिखारी है, इसके दिमाग में तो भूसा भरा है'' – जैसे शब्दों का प्रयोग बिल्कुल न करें।

वाणी की महिमा बतलाने के लिए ही कवि ने कहा है –

कागा काको लेत है, कोयल काको देत।
मीठे वचन सुनाय के, जग अपनो कर लेत।।

कौवा लोगों का क्या लेता है? और कोयल लोगों को क्या देती है? कुछ भी तो नहीं; परंतु कौवे की कर्कश आवाज उसे किसी के घर के आस–पास भी नहीं बैठने देती; जबकि कोयल की मधुरध्वनि सबको आकर्षित करती है, उसकी ध्वनि जिधर से आती है, सब लोग उधर देखने लगते हैं, प्रसन्न हो जाते हैं।

इसी प्रकार यदि हमारी कठोर, कर्कश, झगड़ालू व अहंकारी भाषा है, दूसरों की निंदा करते हैं तो निश्चित ही हमें कौवे जैसे भगाये जायेंगे और यदि हमारी वाणी में मधुरता है, कोमलता है, तो हमें कोयल जैसा स्नेह प्राप्त होगा।

हम जैसे शब्दों का प्रयोग करेंगे, उसी प्रकार की प्रतिध्वनि के रूप में हमें भी सुनाई पड़ेगी। आपने सुना होगा कि यदि किसी दुकान पर कोई रामनाथ चौबे नाम का व्यक्ति काम करता हो और हम यदि आवाज देते हैं – 'चौबे!'

तो उधर से वह बोलता है – 'हाँ वे!'

और यदि हम कहते हैं – 'चौबेजी!'

वह भी जवाब देता है – 'हाँ जी!'

हम जिसप्रकार की ध्वनि निकालेंगे प्रतिध्वनि के रूप में हमें वही सुनने को मिलेगा। चाहे हृदय की कठोरता हो या वाणी की, कठोरता किसी को भी प्रिय नहीं लगती।

एक बार दाँत, जीभ से नाराज हो गए कि हम सब चबाते रहते हैं और जीभ स्वाद लेती रहती है। दाँतों ने जीभ से कहा – "तुझमें कोई दम तो है नहीं, तुझमें एक हड्डी भी नहीं है, हम चाहें तो अभी तुझे काट सकते हैं/घायल कर सकते हैं।"

जीभ ने कहा "सावधान! मैं कोमल हूँ, इसका मतलब मैं कमजोर हूँ – ऐसा नहीं है। यदि तुमने मुझे घायल करने की कोशिश की, मुझे कमजोर समझने की भूल की, तो ध्यान रखना मैं चाहूँ तो बत्तीस के बत्तीस दाँतों को तुड़वा सकती हूँ।"

यह बिल्कुल सत्य है, जीव तो चटर-पटर कुछ भी बोल करके अंदर गुफा में चुपचाप बैठ जाएगी, लेकिन टूटने का नंबर उन कठोर दाँतों का ही आएगा। इसलिए कठोरता टूटती है/तिरस्कृत होती है, जबकि कोमलता का सम्मान होता है।

अन्य कोई कैसे भी शब्दों का प्रयोग करे; परंतु हमें किसी भी परिस्थिति में अपनी जबान अर्थात् वाणी को अशुद्ध करके अपना मन और वचन खराब नहीं करना चाहिए।

एक चूड़ी बेचने वाला व्यक्ति गधी के ऊपर चूड़ियाँ रखकर गाँव में बेचने जाता था। वह गधी को बोलता जाता, "अरे माँजी! जरा तेज चलिए गाँव में जल्दी पहुँचना है। ओ बहनजी! थोड़ा तेज चलिए बाजार में जल्दी पहुँचना है।"

तब किसी व्यक्ति ने कहा अरे भाई! तुम इस गधी को माँ, बहन क्यों कहते हो?

उसने कहा "भैया! मैं चूड़ियाँ बेचता हूँ। मेरे पास माँ-बहन ही खरीदारी के लिए आती हैं, इसलिए मैं चाहता हूँ कि मेरी वाणी कभी भी अशुद्ध न हो जाए; यदि मैं इस गधी को भी माँ-बहन कहता रहता हूँ तो मेरी जबान पर कोई खोटा शब्द आता ही नहीं है, यदि मैं इसे ही गधी कहकर या गाली देकर बोलने लगा और चूड़ियाँ बेचते समय भी ऐसे शब्द निकल गए तो मेरा धंधा ही चौपट हो जाएगा; इसलिए मैं अपने व्यापार को बचाने और मन की अशुद्धि से बचने के लिए ऐसे वचन बोलता हूँ।"

यह है समझदारी। हमें समाज, व्यापार, कार्यालय कहीं पर भी रहना है, यदि हम सभी के साथ प्रसन्नता के साथ बात करते हैं, आदरपूर्वक बात करते हैं, विनम्रतापूर्वक जवाब देते हैं, किसी का कार्य करने के लिए उत्सुक होकर तैयार होते हैं तो हमें सभी स्नेह करेंगे। यदि हम किसी का कार्य करने में सक्षम नहीं हैं तो भी हम मधुरता के साथ, विनम्रता के साथ कार्य न कर पाने की बात कहते हैं तो भी लोगों को बुरा नहीं लगता; जबकि हम कठोरता पूर्वक बात करते हुए किसी का काम कर भी दें तो भी लोग हमें - अहंकारी, गुस्सैल, नकचढ़ा इत्यादि शब्दों के द्वारा ही पीठ पीछे संबोधित करते हैं।

मित्रो! आपके हृदय में जो मित्रता, प्रमोद, करुणा, मध्यस्थता, निर्मानता, निष्पक्षता, सरलता, सहयोग, समानता आदि के भाव/विचार भरे हुए हैं, उन विचारों को इस वाणीरूपी वाहन से समाज में भेजिए, आप निश्चित ही यशस्वी व्यक्तित्व के धारक बनेंगे।

एक सूक्ति आती है 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' हमें कहीं पर भी अति नहीं करना चाहिए। चाहे वह खेलना-कूदना हो, पैसा कमाना हो, हँसी-मजाक हो या खाना-पीना हो सर्वत्र मर्यादा रहनी चाहिए। यदि मर्यादा से बाहर होते हैं तो निश्चित ही वह विसंवाद का कारण बनता है।

मनीषियों ने कहा है कि हमें सभी कार्यों हेतु तो दो-दो अंग प्राप्त हुए हैं जैसे चलने के लिए दो पैर, काम करने के लिए दो हाथ, देखने के लिए दो आँख, सूँघने के लिए दो नाक छिद्र हैं, सुनने के लिए दो कान हैं यदि किसी कारण से एक में कोई खराबी आ जाए तो भी हमारा कार्य चलता रह सकता है परंतु जीभ एक ही है और उसके काम भी दो हैं; बोलना और भोजन करना। इसलिए इस जीभ का उपयोग तो और भी अधिक संतुलित करना चाहिए; क्योंकि जिसकी कमी हो उसे सभी कहते हैं कि संभाल कर के खर्च करो। सुभाषितकार कहते हैं -

जिह्वे प्रमाणं जानीहि भोजने भाषणेऽपि च।
अतिभुक्तिरतीवोक्तिः सद्यः प्राणापहारिणी।।

"हे जिह्वा! अर्थात् जीभ तुम भोजन और भाषण दोनों में ही अपने प्रमाण अर्थात् मर्यादा/सीमा को जानो; क्योंकि अधिक भोजन करना और अधिक बोलना दोनों ही शीघ्र ही प्राणों का हरण करने वाले हो सकते हैं।"

जो व्यक्ति अपने स्वास्थ्य का ध्यान किए बिना मात्र स्वाद और दूसरों का भोजन है, यह देखते हुए भोजन कर लेते हैं, उनका स्वास्थ्य इतना भी बिगड़ सकता है कि प्राण भी निकल जाएँ; इसीलिए कहा जाता है कि 'भाई! माल दूसरे का है; परंतु पेट तो अपना है इस बात का ध्यान रखो।"

इसी तरह इसी जीभ से हमें बोलना भी है, बोलते समय हम ऐसे शब्दों का ही प्रयोग करें, जो दूसरों का अनादर करनेवाले न हों, आदेशात्मक न हों, निंदा करने वाले न हों, झूठ न हों, चापलूसी से भरे हुए न हों, चुगलखोरी के वचन न हों - इनका ध्यान रखते हुए हमें मर्यादित - हित-मित-प्रिय वचन बोलना चाहिए; अन्यथा हम दूसरों की निंदा-प्रशंसा करते हुए, दूसरों को लड़ाते हुए कभी स्वयं भी उन

दोनों के डंडों के हकदार बन जाएंगे; और इतना ही नहीं अपने प्राण तक जा सकते हैं; इसीलिए किसी ने कहा भी है –

जिह्वा अति ही बावली, कह गई स्वर्ग पाताल।
कहकर वह तो चुप रही, डंडे सहे कपाल।।

यदि हमारे कपाल अर्थात् सिर को डंडे–जूते सहन नहीं करना है, गले में जूतों की मालाएँ नहीं पहनना है, किसी से अपमानित नहीं होना है तो हम अपने वचनों द्वारा कभी भी किसी को अपमानित न करें, असहयोग के वचन न बोलें, लोकविरुद्ध कथन न करें अर्थात् जिस समाज में, जिस देश में, जिस परिवार या जिस धर्म में जिस प्रकार के वचनों का प्रयोग निषिद्ध किया गया हो – उस प्रकार के वचन भले अन्यत्र स्वीकार्य हों तो भी हमें प्रयोग नहीं करना चाहिए। (आचार्यों ने 10 प्रकार के सत्य कहे हैं, वह आगम से समझकर उनका प्रयोग करना चाहिए और अन्य द्वारा प्रयुक्त शब्दों का अर्थ समझना चाहिए)

शब्दों में भी कुछ ऐसे शब्द हैं, जिन्हें मनीषी राजा शब्द कहते हैं और कुछ शब्द ऐसे हैं, जो बड़े कष्टकर हैं। आपको भी जीवन में लगता होगा कि किसी के कुछ शब्द सुनकर के हृदय गद्‌गद् हो जाता है और कोई शब्द ऐसे आते हैं जो हृदय में शूल की तरह चुभते हैं। भले वे व्यक्ति आदरणीय हों लेकिन उनके द्वारा भी अगर कठोर शब्द कहे जाते हैं तो हमें कष्ट कर होते हैं।

हम जिस वातावरण में रहते हैं, जिस परिवार और समाज के बीच में रहते हैं, वहाँ यदि हमें सर्वप्रिय बनना है, अपने व्यक्तित्व का विकास करना है तो सुभाषितकार के अनुसार दो शब्द बहुत कष्ट कर हैं, दो शब्द राजा हैं, उनको समझ कर हमें उपयोग करना चाहिए –

देहीति वाक्यं वचनेषु कष्टं,
नास्तीति वाक्यं च ततोऽतिकष्टम्।

गृह्णातु वाक्यं वचनेषु राजा,
नेच्छामि वाक्यं च ततोऽधिराजः।।

सुभाषितकार कहते हैं 'दो अर्थात् दीजिए, यह मुझे दीजिए, यह मुझे चाहिए है (अर्थात् माँगना) यह शब्द बहुत ही कष्ट कर हैं।

कुछ लोग होते हैं जो हमेशा किसी से भी, कुछ भी माँगते ही रहते हैं। यह माँगना/याचना करना, 'दो' शब्द कहना कि यह मुझे दो यह बहुत ही कष्ट कर है। जो निर्लज्ज होगा, वही हर किसी के सामने हाथ फैलायेगा।

परिस्थितिवश जीवन में अत्यावश्यक होने पर स्वाभिमानी व्यक्ति भी यदि किसी से कुछ माँगता है, तो वह बहुत शर्मिंदा होता है। यह अलग बात है कि सामने वाला उसकी आवश्यकता समझते हुए, उसे निःसंकोच वह सामग्री देता है; फिर भी जो स्वाभिमानी व्यक्ति है, उसे 'दो' यह शब्द बहुत ही कष्ट कर है।

मनीषी कहते हैं कि 'दो' शब्द तो कष्टकर हैं ही लेकिन सामने वाला यदि कहे 'मेरे पास नहीं है' या 'नहीं' कहना, मना करना उससे भी अधिक कष्टकर है (माँगने पर मना करना)।

इस आधे श्लोक में हमें यह शिक्षा दी जा रही है कि हमारे पास जो भी साधन हैं, हम उन साधनों में रहना सीखें, अगर हमारे पास किसी कारण से कमी है, हमारे परिवार में कोई साधन नहीं हैं, तो हम लालची होकर हर किसी के सामने माँगने ना जाएँ। हमारे पास जो वस्त्र हैं, आभूषण हैं, वाहन हैं या अन्य साधन हैं उनका ही उपयोग करें। हमारे पास साइकिल है तो साइकिल से ही जाएँ पड़ोसी से स्कूटर की चाबी माँगने के लिए न पहुँचें। स्कूटर है तो दूसरे की कार लेने के लिए न जाएँ, हम बस से सफर करें, लेकिन स्वाभिमान से करें। हमारे पास सामान्य

ड्रेस है तो उसको पहने, दूसरे से माँग कर सूट–बूट पहन करके जाना यह कोई सम्मानसूचक नहीं है। हमारे पास जो खाने–पीने की सामग्री उपलब्ध है, उसका ही उपयोग करें। बच्चों को भी इस बात को सिखाएँ, अगर उनके टिफिन में रूखा पराँठा रखा हुआ है तो वह बहुत ही प्रसन्नता के साथ खायें, परंतु दूसरे से अचार–पापड़, मिठाई या नमकीन देने के लिए कभी न कहें।

इसके साथ ही यदि किसी ने 'दो' यह शब्द कह ही दिया है और हमारे पास वह साधन, सामग्री है, हमें वह सामग्री देने पर स्वयं कोई दिक्कत नहीं होने वाली है तो हमें मना भी नहीं करना चाहिए। यदि हम मना करते हैं, सामग्री साधन होते हुए भी 'मेरे पास नहीं है' यह शब्द कहते हैं तो सुभाषितकार कहते हैं यह तो और भी अधिक कष्टकर है। परिस्थितिवश सच में ही हमारे पास साधन न हो, सामग्री न हो और हमें मना करना पड़े तो उसका भी खेद होना चाहिए कि हमारे मित्र/परिचित ने कोई कारणवश हमसे कुछ माँगा और आज हम उन्हें सहयोग नहीं कर पा रहे हैं। नीति का एक दोहा आता है –

रहिमन वे नर मर गए, जो पर घर माँगन जाहिं।
उनते पहले वे मरे, जिन मुख निकसत नाहिं।।

इसमें भी यही भाव भरा हुआ है कि जो दूसरों के घर माँगने के लिए जाते हैं वह तो मर ही गए और जिनके मुख से मना निकलता है उनकी तो और पहले मृत्यु हो गई।

आगे सुभाषितकार कहते हैं कि जिन पुरुषों के मुँह से यह निकलता है कि 'गृह्णातु' अर्थात् 'आप लीजिए' यह तो राजा शब्द है। जो साधन, सामग्री हमारे पास उपलब्ध है, वह जिनको आवश्यकता है, जो हमारे बीच में हैं, उनके लिए चल करके स्वयं कहे कि 'आप लीजिए' जिसको सुनकर के लोग प्रसन्न हो जाएँ; जो अपने परिचितों/पड़ोसियों

के बीच जाकर कहे – "आपके घर में शादी है (अथवा कोई बीमारी का प्रसंग है) आप निसंकोच मुझसे कहना, अपने पास गाड़ी है, कोई पैसे की आवश्यकता हो तो पैसा है, कहीं चलना हो तो मेरे पास समय है, मेहमानों के लिए ठहराना हो तो मेरे घर में आप ठहरा सकते हैं या अन्य किसी भी सामग्री की आवश्यकता हो तो आप कहिएगा आप इनका उपयोग कीजिए; यह सब आपके ही साधन हैं।

इन शब्दों को सुनने मात्र से ही व्यक्ति प्रसन्न हो जाएगा। आप भोजन कर रहे हैं और अन्य से यदि कहते हैं कि 'आप लीजिए', वह कितना खुश होता है। इसलिए 'आप लीजिए, ग्रहण कीजिए' यह शब्द तो राजा शब्द हैं; लेकिन उससे भी 'अधिराज' शब्द 'मैं नहीं चाहता हूँ' 'मुझे आवश्यकता नहीं है' है। आपने लेने के लिए कहा, उसके लिए बहुत–बहुत धन्यवाद, अनुगृहीत हुआ; परंतु मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता होने पर मैं जरूर आप से ले लूँगा।

शब्दों का कमाल देखिए किस तरह से व्यक्तित्व का विकास होता है। किस तरह से एक स्वाभिमानी चरित्र का निर्माण होता है।

एक वे लोग हैं, जिनके पास स्वयं का साधन है फिर भी अपना साधन–सामग्री छोड़कर दूसरों से 'माँगने' जाते हैं।

दूसरे वे लोग हैं, जिनके पास पर्याप्त साधन–सामग्री है फिर भी कोई माँगने आया तो मना कर देते हैं, 'हमारे पास नहीं है'।

तीसरे वे लोग हैं, जो अपने साधन–सामग्री का अपने मित्रों/परिचितों और रिश्तेदारों अथवा अन्य जिन्हें आवश्यकता है, उनको स्वयं अपनी ओर से प्रस्तुत करते हैं कि 'आप लीजिए'।

लेकिन स्वाभिमानी, पुरुषोत्तम वह है कि आवश्यकता होने पर भी, अपने साधनों का ही उपयोग करता है, कभी किसी से कुछ चाहता नहीं

है, वह हाथ जोड़कर यही निवेदन करता है "आपकी भावना/सहयोग के लिए बहुत–बहुत धन्यवाद; परंतु हमें इस साधन की अभी आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता होगी तो हम जरूर आपसे सहयोग लेंगे। आप सबके बीच में रहकर हमें किसी बात की चिंता नहीं है।"

इन शब्दों का प्रयोग करते हुए भी कभी भी परावलंबी जीवन नहीं जीना चाहता। अपने बच्चों को भी दूसरों के साधन से शौक पूरे नहीं कराना चाहता, अपने बच्चों को भी वह स्वाभिमानी होने का ही पाठ पढ़ाता है और कहता है 'उतने पाँव पसारिए, जितनी लंबी सौर (चादर)।'

हम देखा–देखी और दिखावे का जीवन न जियें, छल–प्रपंच पूर्वक अपने आपको बड़ा दिखाने की कोशिश न करें, जबरदस्ती अनावश्यक रूप से सहयोग माँगे नहीं और यदि कोई सहयोग माँगता है और हम कर सकते हैं तो कभी हम मना न करें – ऐसे उदार चरित्र के हमारे वचन हों तो हम सर्वप्रिय बनेंगे।

हम अपने जीवन को निहारें कि हमारे जीवन में ऐसे शब्दों का उपयोग होता है या नहीं और यदि ऐसे अच्छे शब्दों का उपयोग नहीं होता है तो अपनी जबान को परिमार्जित कर – 'लीजिये' और 'नहीं चाहिए' शब्दों का विनम्रतापूर्वक उपयोग कर, अपने जीवन को निखारें।

○○○

विघ्न भयों से ना घबराना, हिम्मत कर बढ़ते जाना।
कदम रुके ना, शीश झुके ना, हो चाहे विपरीत जमाना।।
डरना तो मरना है बंधु ! निर्भय होकर कदम बढ़ाओ।
धीर–वीर हो नित ही चलना, है तुमको इतिहास बनाना।।

(7)

मन, वचन समान ही – कर्म भी महान हो

''भले ही हम पूरे ब्रह्माण्ड को आलोकित करने वाला सूर्य नहीं बन पाते, तो कोई चिंता की बात नहीं, लेकिन घर को प्रकाशित करने वाला एक छोटा-सा दीपक तो बन ही सकते हैं।''

"If we are not able to be come sun to illuminate the entire universe, not to worry, but we should become a little lamp to light up the home." – **अज्ञात**

हमारे व्यक्तित्व के विकास अथवा जीवन को निखारने/चमकाने में विचार व वाणी के बाद हमारे कर्म ही प्रधान होते हैं। कर्म अर्थात् कार्य। आपके जो भी अच्छे विचार हों वे वाणी से प्रकट तो होते हैं, परन्तु कार्यों के द्वारा ही सभी को उन विचारों के प्रति हमारी आस्था का पता लगता है। कहा भी गया है –

'मनुष्य जन्म से नहीं, कर्म से महान बनता है।'

यदि आपके कार्य अच्छे हैं, तो विचार भी अच्छे ही होंगे; यही सब मानकर चलते हैं। इसे हम ऐसा भी कह सकते हैं कि यदि आप कार्य अच्छे नहीं करते तो कदाचित् आपके वचन या विचार कुछ अच्छे भी हों तो भी उनकी क्या उपयोगिता है ? इसलिए हमें हमारे कार्यों को अवश्य देखना चाहिए कि वह आगम/शासन व समाजसम्मत हैं या नहीं ?

इस प्रकरण में सबसे पहले हम चर्चा करेंगे –

1. हम मिथ्यात्व अर्थात् अंधविश्वासों से बचें – लोक में हम देखते हैं कि अनेक प्रबुद्ध व समृद्ध व्यक्ति भी अनेक प्रकार के अंधविश्वासों में फँसे हुए होते हैं। कोई नींबू-मिर्ची लगाता है, तो कोई कहीं अगरबत्ती लगाता है, तो कोई हाथ में धागा बाँधता है, कोई पैर में धागा बाँधता है,

कोई पेड़ को धागा बाँधने जाता है, तो कोई अपनी गाड़ी व दुकान की पूजन करता फिरता है, कोई किसी दिन/दिशा को ही मंगलकारी मानता है या किसी भी देवी-देवता या यहाँ तक किसी विशिष्ट तीर्थंकर भगवान को ही इष्ट मानकर अपनी लौकिक कामनाओं की पूर्ति के लिए क्रियाएँ करता है। उसकी यह क्रियाएँ उसकी प्रबुद्धता पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं।

आज के वातावरण में तो अत्यंत स्पष्ट है कि हिंदू-मुस्लिम-सिख-जैन-ईसाई कितने-कितने धर्मों को और अपने-अपने इष्ट देवताओं/दिशाओं/मुहूर्तों को मानने वाले पूरे विश्व में फैले हुए हैं, परंतु इस कोरोना बीमारी के भय के कारण सभी अपने आराधनास्थल छोड़ने को मजबूर हैं। कोई भी देवी-देवता, मुहूर्त हमारी इस बीमारी का निराकरण करने के लिए आज तक उपस्थित नहीं हुए हैं। यह इस बात का सूचक है कि सच में 'जो कार्य, जब होना हो, जैसे होना हो, जिसके द्वारा होना हो वह वैसा ही होता है' उसे टालने में कोई समर्थ नहीं है; तो करने व बदलने के लिए भी कोई समर्थ नहीं है। इसलिए हम अपने विचारों को इतना परिमार्जित करें, वस्तुस्वातंत्र्य के सिद्धांतों पर इतनी अधिक आस्था हो कि उनका प्रस्तुतीकरण अंधविश्वासों से दूर हमारे कार्यों में भी दिखलाई दे।

एक प्रश्न यह भी हो सकता है कि यदि किसी भी भगवान ने आकर हमारी सहायता नहीं की है, वे रोग को दूर नहीं कर रहे हैं; तो हमें भगवान की आराधना करना चाहिए या नहीं ? णमोकार मंत्र/भक्तामर-स्तोत्र पाठ पढ़ना चाहिए या नहीं ?

मित्रो ! यह समझने की बात है कि हमें 'भगवान की आराधना, उनके गुणों को देखकर, उन जैसे गुण अपने में प्रकट हों इसके लिए करना चाहिए' उनके जीवन और अपने जीवन को हम देखें कि उनमें क्या-

क्या अच्छाइयाँ हैं और मुझमें क्या-क्या कमियाँ हैं? वह भी हमारे जैसे बालक रहे, जवान रहे, परिवार में रहे; परंतु वह आदर्श बन गए, तो किन गुणों के कारण? और मैं अच्छा पुजारी भी नहीं हूँ तो किन दोषों के कारण? उनके सुखद गुणों को देखने के लिए ही हमें मंदिर जाना चाहिए, उनके गुणों को देखकर पूजन-अर्चना करना चाहिए। वह परमात्मा निर्दोष व्यक्तित्व हैं और हम सदोष हैं। हम अपने दोषों का प्रक्षालन करने के लिए परमात्मा की पूजन करें, आराधना करें। अपनी दुकान चलाने, रोग भगाने, शादी करने, बच्चे पैदा करने के लिए उन भगवान का उपयोग नहीं करें अन्यथा वह कार्य तो अपनी योग्यता से ही होता है, पर हमारी ऐसी मिथ्या मान्यता पुष्ट होगी कि उनके कारण कार्य हुआ है।

जब इस प्रकार के रोग आदि आते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी हमारे इस कार्य में सहयोगी नहीं बन पा रहा है और सच यही है कि जब आपको लगा था कि कोई मंत्र-तंत्र या कोई देवी-देवता सहभागी बने हैं, तब भी वे सहभागी बने नहीं थे, मात्र वह कार्य होने का अवसर था और उसी समय आपने उनकी आराधना की तो ऐसा संयोग बन गया और आपका मिथ्या भ्रम पुष्ट हो गया। 'हम अंधविश्वासों से बचकर निर्दोष परमात्मा की, निर्दोष होने के लिए ही आराधना करें।'

2. स्व-पर हितकर कार्य करें - हम कोई भी कार्य यह देखकर करें कि उन कार्यों से अपना और पर का हित हो रहा है या नहीं? हम जो कार्य कर रहे हैं वह केवल काम करने के लिए, काम न करें; उससे हमारा और हमारे आसपास रहने वालों का भी कोई न कोई हित सिद्ध हो ऐसे ही कार्य हमें करना चाहिए। दूसरों का अहित करके, अपना हित सिद्ध करने का कार्य तो कभी भी नहीं करना चाहिए।

3. राष्ट्र समाज के विरुद्ध कार्य न हो - हम जो भी कार्य करें वह

राष्ट्र व समाज के विरुद्ध न हो। ऐसा कोई व्यापार/उद्योग न करें जो राष्ट्र के नियमों के विरुद्ध हो, जो समाज अर्थात् बहुजन का अहितकर हो। जैसे कि मिलावट करना, नकली सामग्री बेचना/बनाना। यदि हम इंजीनियर हैं और हम भवन या सड़क आदि में पैसा लेकर कमजोर सामग्री लगवाते हैं, डॉक्टर हैं तो हम नकली दवाइयाँ, महँगी दवाई लिखते हैं, पैसा कमाने के लिए जो दवाइयाँ/जाँच आवश्यक नहीं है, वह कराते हैं; अध्यापक हैं तो हम जो अध्यापन कार्य करना चाहिए वह नहीं करके केवल टाइमपास करते हैं, कोचिंग में पढ़ाते हैं, पर स्कूल में नहीं पढ़ाते हैं, विद्यार्थी हैं तो हम नकल करने का उपाय तो करते हैं; परंतु समझने-पढ़ने का प्रयास नहीं करते; यह सभी कार्य सरकार/समाज/परिवार के लिए अहितकर हैं। ऐसे कार्य व्यक्तिगत रूप से हमें तात्कालिक लाभदायक लगेंगे; परंतु सच में वह हमारे लिए भी अहितकर ही हैं; ऐसे कार्य हमें तनाव और पाप देने वाले हैं; इसलिए हमें ऐसे कार्यों से बचना चाहिए।

4. माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध कार्य न करें – एक योग्य व आदर्श व्यक्ति वही है, जो अपने माता-पिता, दादा-दादी या जो परिवार के वरिष्ठजन हैं, उनकी इच्छा के विरुद्ध कार्य नहीं करता है। हो सकता है कभी उनकी इच्छा गलत भी हो, तो भी हमें उनको विनयपूर्वक समझाने का प्रयास करना चाहिए; परंतु उद्दंडतापूर्वक/अविनय पूर्वक हमें उनकी इच्छा के विरुद्ध कार्य नहीं करना चाहिए।

वे कहीं जाने का मना करते हैं, कुछ खाने का मना करते हैं, कुछ पहनने के लिए मना करते हैं, किसी तरह का बोलने के लिए मना करते हैं, कुछ खरीदने के लिए मना करते हैं या कहीं शादी-ब्याह करने के लिए मना करते हैं, तो हमें इन सब बातों को स्वीकार करना चाहिए।

यदि हमारे मन में उनकी इच्छा के विपरीत कुछ और है तो वह उनके

समक्ष हमें विनम्रता पूर्वक रखना चाहिए, समझाने का प्रयास करना चाहिए; फिर भी यदि वे हमारी बात नहीं मानते हैं तो यदि वह कार्य आगमविरुद्ध नहीं है तो हमें उनकी बात अवश्य ही मानना चाहिए। ध्यान रहे माता-पिता, स्नेही, स्वजन अथवा परिजन बहुधा हमारे हित ही की बात करते हैं।

माता-पिता डिग्रियों में कम हो सकते हैं, परंतु उनके अनुभव बहुत ज्यादा हैं, वे समाज व देश के अनुरूप सोचते हैं। उन्होंने हमारे लालन-पालन के लिए क्या-क्या किया है? उसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते। वे हमारा बुरा हो जाए, ऐसा कभी नहीं सोच सकते। उनकी संतान औरों से पीछे रह जाए, ऐसा नहीं सोच सकते। वे हमारे हित में ही सोच रहे हैं, यह हमें पक्का कर लेना चाहिए।

हमारे लिए अपने माता-पिता की आज्ञा पालन करने का मौका मिला है, यह भी एक जीवन की उपलब्धि है। हम वही कार्य करें जो अपने परिवार के हित में हो। यदि हम ऐसा करते हैं तो परिवार के बीच तो हम सर्वप्रिय बनेंगे ही, लेकिन समाज में भी एक आदर्श व्यक्ति के रूप में जाने जायेंगे।

परिवार में आपसी विवाद का कारण कभी पैसा न बन पाए, इसका प्रयास हमें करना चाहिए। प्रायः देखा जाता है कि दो भाई पैसे/जमीन के कारण आपस में झगड़ा करने लगते हैं/बोलचाल बंद हो जाती है। तब विचार करना चाहिए कि जब आप छोटे थे तब आपके बड़े भाई ने आपको आवश्यकता होने पर अपनी आधी रोटी भी खिलाई है, अपने कपड़े भी आपको दिए हैं, यदि आप कुछ देर नहीं मिलते थे तो वह मिलने को बेताब हो जाते थे, इसीतरह यदि आप बड़े भाई हैं, तो बचपन में छोटे भाई के प्रति आपको कितना प्रेम था, उसको याद कीजिए तो विवाद अवश्य दूर हो जायेंगे।

अंतराय न करें -

"आप न काहू काम के, डार पात फल फूल।
औरन को रोकत फिरे, रहिमन पेड़ बबूल।।"

अंतराय अर्थात् विघ्न करना। हम अपने व्यक्तित्व की विघ्नकर्ता के रूप में पहचान ना बनाएँ। समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिनको लोग इसी रूप में जानते हैं कि यदि इस कार्य के समाचार उन तक पहुँचेंगे या उनसे पूछने जाएँगे तो निश्चित ही वह अनेक कुतर्क उठाकर इस कार्य को बंद कराने का ही कार्य करेंगे और यदि बिना पूछे कर लिया तब भी वह कहीं न कहीं से किसी न किसी रूप में ऐसी बातें सामने लाएंगे जिससे कि कार्य न हो सके।

हम कभी भी व्यक्ति/परिवार/समाज में इस रूप में न जाने जाएँ। हमारी पहचान हमेशा ही सकारात्मक सोच वाले व्यक्ति के रूप में हो। हमसे पूछकर काम किया गया हो या काम हो जाने के बाद सूचना दी जा रही हो या सूचना न भी दी जा रही हो तो भी हम हर अच्छे कार्य की कृत-कारित-अनुमोदना के रूप में सहयोगी बनने का ही प्रयास करें। हम कभी भी किसी भी, व्यक्ति के जीवन में निम्नलिखित कार्यों में अंतराय न करें -

अ. ज्ञान - कोई भी व्यक्ति/परिवार/समाज/संस्थान यदि सम्यग्ज्ञान के प्रचार में लगा है। व्यक्ति स्वाध्याय कर रहा है, अध्ययन कर रहा है, कक्षा या शिविर संचालित हो रहे हैं तो हम कोई भी ऐसा कार्य, किसी भी परिस्थिति में न करें, जो उस ज्ञानवर्द्धक कार्य में व्यवधान डालता हो। हम ज्ञानप्रचार में सहभागी बन सकें, यह तो बहुत अच्छी बात है ही; परंतु यदि सहभागी न बन सकें तो असहयोगी न बने।

जैसे - कोई अध्ययन कर रहा है उस समय हम जोर-जोर से बातें

करते हैं, जहाँ कक्षा चल रही है वहाँ पर लाइट बंद करते हैं या अन्य अव्यवस्था वहाँ पर करते हैं, हम स्वाध्याय के स्थान/समय पर अपनी कोई भी शारीरिक/वाचनिक गतिविधि करते हैं जिससे कि वहाँ व्यवधान हो, यह बहुत बड़ा दोष है, पाप है। फलस्वरूप हमें भी भविष्य में ज्ञान प्राप्ति होने के अवसर नहीं रहेंगे अथवा अनेक बाधक तत्त्व हमारे ज्ञान की उन्नति को रोकेंगे।

आ. दान - परिवार का सदस्य या अन्य कोई यदि पारमार्थिक कार्य के लिए उत्साह पूर्वक दान कर रहा है तो हम किसी भी रूप में टांग ना अड़ायें अर्थात् व्यवधान न करें।

कुछ अधिक बुद्धिमान जीव होते हैं जो दानकर्ता के लिए सलाह देने पहुँच जाएँगे, अभी कार्य तो प्रारंभ हुआ नहीं अभी से आप क्यों देते हैं? काम होना प्रारंभ तो होने दीजिए; लोगों को सहयोग तो करने दीजिए; काम होने वाला नहीं है; यह तो इनका व्यक्तिगत कार्य है; यह तो अपने नाम के लिए कर रहे हैं इत्यादि अथवा जो दान करनेवाले हैं, उनके प्रति दुर्भावना फैलायेंगे कि वे तो नाम के लिए दान करते हैं; दो नंबर के पैसे का दान करते हैं; जहाँ उनको इज्जत मिले वहाँ बिना देखे लुटाते रहते हैं अथवा वे घोषणा तो कर देते हैं परंतु देते नहीं हैं इत्यादि वचनों के द्वारा हम दान करने में यदि अंतराय करते हैं तो यह बहुत बड़ा अपराध है और हम एक अच्छे कार्य के होने में बाधक बन सकते हैं; जिसके लिए हमारा नाम कुख्यात हो जाएगा; हम कभी भी ऐसे कार्य न करें।

इ. लाभ - जिसको जो कुछ भी प्राप्त होता है, वह उसके भाग्य से प्राप्त होता है। यदि उसके पुण्य का उदय नहीं है तो उसे प्राप्त नहीं होगा और यदि पुण्य का उदय है तो सुभाषितकारों ने कहा है कि -

यद् धात्रा निजलाभपट्टलिखितं स्तोकं महद् वा धनं
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ च नातोऽधिकम्।

तद् धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्ति वृथा मा कथाः
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णापि तुल्यं जलम्।।49।।

"भाग्य के द्वारा अपने ललाट के फलक पर लिखा गया अल्प अथवा अधिक जो धन है, उस धन को मनुष्य मरुस्थल में भी भली प्रकार प्राप्त करता है, उससे अधिक धन को सुमेरु पर्वत पर भी नहीं प्राप्त कर सकता है। इसलिए हे मनुष्य! धैर्यशील बनो, धनिकों के समक्ष हीन वृत्ति को धारण मत करो। देखो, घड़ा, कुआँ और समुद्र दोनों में से एक समान मात्रा में ही जल को ग्रहण करता है।"

पुराणों में ऐसे अनेक कथानक आते हैं कि किस तरह विपरीत परिस्थितियों में भी पुण्य का योग होने पर उन्हें सभी समागम प्राप्त हो गए। जंगल में सीता को भाई मिल गया, प्रद्युम्न की रक्षा करने के लिए विद्याधर आ गए, सीताजी की अग्नि परीक्षा के समय देव उपस्थित हो गए, सेठ सुदर्शन के लिए सूली से सिंहासन बन गया, श्रीपाल, धन्य कुमार, जीवन्धरकुमार के जीवन में सहज सुविधाएँ उपलब्ध होती गईं। यह सब पुण्य का ही कार्य है।

वर्तमान में भी हम देखते हैं कि कितने ही लोग जिनका कोई परिचय नहीं, कोई अनुभव नहीं पर वे जहाँ भी पहुँचते हैं, वहाँ सम्मान मिलता है, व्यापार चलने लगता है। कहा भी जाता है कि 'यह मिट्टी को छूते हैं तो सोना बन जाता है।'

ऐसा होते हुए भी यदि हम किसी के लाभ में अंतराय/व्यवधान करने की भावना भाते हैं तो हम अपनी ही छवि खराब करते हैं।

कोई किसी को भोजन करा रहा है, उसमें हम अंतराय कर दें, कोई किसी को दान दे रहा है उसे लाभ होने वाला है, उसमें हम अंतराय कर दें, किसी को धर्म लाभ होना है, उसमें हम अंतराय कर दें इस तरह हम

किसी के लाभ में यदि व्यवधान करते हैं, अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए दूसरों को कमजोर दिखाते हैं तो यह एक आदर्श व्यक्तित्व का कार्य नहीं हो सकता। 'व्यक्ति अपने दु:ख से कम दु:खी है और दूसरे के सुख से ज्यादा दु:खी होता है।' अत: दूसरे के काम बिगाड़ कर आनंद मानता है; हम ऐसे कार्य कभी भी न करें।

ई. भोग-उपभोग - भोजन-पानी, दूध, फल इत्यादि सामग्री जिनका कि एक बार ही उपयोग किया जाता है, वह भोग सामग्री कहलाती है और वस्त्र, मोबाइल, गाड़ी इत्यादि जिनका बार-बार उपयोग कर सकते हैं, वह उपभोग सामग्री कहलाती है।

हम अपने मन-वचन-काय से कृत-कारित-अनुमोदना से किसी भी जीव के भोग-उपभोग में अंतराय न करें।

अनेक लोगों की खोटी आदत होती है - पशु चारा चर रहा है, उसी समय डंडा मारकर भगा देंगे; कोई कुत्ते को रोटी दे रहा है, वे पत्थर मारकर भगा देंगे; कोई भोजन करने के लिए घर में बैठा है, तभी उसे काम बताएँगे; कोई कपड़े पहन कर जा रहा है, उसे 'यह कपड़े अच्छे नहीं हैं' या 'यह तो मेरे कपड़े हैं', 'यह तो मैं पहनूँगा' कहकर उससे कपड़े उतरवा लेंगे; किसी की गाड़ी खराब कर देंगे; जिससे कि वह गाड़ी से जा न सके - ये आदतें अच्छी नहीं हैं। हम किसी के भी खान-पान एवं अन्य उपभोग आदि की सामग्री में व्यवधान न करें, उन सामग्रियों को खराब न करें, उपयोग करते समय टोकाटोकी न करें। हो सके तो सहयोग करें और यदि सहयोग नहीं कर सकते हैं तो असहयोग कदापि न करें।

दूसरों के ज्ञान-दान-लाभ-भोग-उपभोग आदि में अंतराय करने की जो भावना है, वह भावना हमें भविष्य में ज्ञान/धन/सुख से दूर कर देनेवाली है। दूसरों के कार्यों में अंतराय/विघ्न व्यवधान करना या जिसे

सामान्य भाषा में कहते हैं, टाँग अड़ाना/काम बिगाड़ देना यह अंतराय कर्म का आस्रव-बंध कराने वाला है।

ज्ञान की अवहेलना करने से ज्ञानावरण कर्म का आस्रव-बंध होता है, जिसके कारण भविष्य में सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होना, सच्चे धर्म का लाभ होना, धर्म साधनों का लाभ होना, अच्छे वातावरण का लाभ होना, योग्य सामग्री उपभोग को प्राप्त होना, दुर्लभ हो जाएगा।

मित्रो! हम दूसरों को व्यवधान न करके सच में दीर्घकालीन भविष्य में हमारे कार्यों में व्यवधान न हो यह मंगल कार्य करते हैं। हम ऐसा न समझें कि व्यवधान न करके परोपकार कर रहे हैं; बल्कि सच तो यह है कि यह स्वोपकार कर रहे हैं।

ड. शक्ति - हम यदि दान-भोग-उपभोग आदि की शक्ति चाहते हैं, हम ज्ञानार्जन करने के योग्य शक्ति चाहते हैं, खाए हुए को पचाने की शक्ति चाहते हैं, रोग प्रतिरोधक क्षमता चाहते हैं, तो दूसरों की शक्ति को हीन करने, अपमानित करने, ताकत नष्ट करने का उपाय न करें। हम यदि दूसरों के अच्छे कार्यों की अनुमोदना करेंगे तो हमें ऐसे कार्य करने के अवसर प्राप्त होते रहेंगे।

इस तरह दूसरों के ज्ञान-दान-लाभ व उपभोग आदि में व्यवधान न करने वाले के विचार, वाणी और उसी तरह के यदि कार्य हैं तो निस्संदेह वह एक उत्तम व्यक्तित्व के रूप में समाज के बीच में निखरेगा।

6. अधिकारों का दुरुपयोग न करें - हम समाज/संस्था अथवा सरकारी सेवा में किसी उच्च पद पर हो सकते हैं, हमारे पास कुछ अधिकार हो सकते हैं अतः हम इस बात का सदैव ध्यान रखें - हमें वह पद या सामग्री योग्य कार्य करने के लिए ही प्राप्त हुई है। हमें 'परहिताय' निश्चित कार्य करने के लिए अवसर मिला है, यदि हम उस पद या

सामग्री का उपयोग अपने परिवार या स्वयं के लिए करते हैं तो वह दोषपूर्ण आचरण है/निंदनीय है। हमें सरकारी वाहन/स्टेशनरी/फोन या अन्य सामग्री का उपयोग व्यक्तिगत कार्यों या व्यक्तिगत अधिकार/शक्ति दिखलाने के लिए नहीं करना चाहिए।

हम किसी धार्मिक/सामाजिक कार्यक्रम में यातायात विभाग प्रभारी हैं तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वाहन हमारे परिवार वालों के लिए आने-जाने के ही काम आते रहें।

हम विशिष्ट अतिथि भोजनालय के प्रभारी हैं; तो इसका अर्थ यह नहीं है कि हमारे परिवारवाले या रिश्तेदार या परिचित विशिष्ट अतिथि बनकर भोजनालय में भोजन ग्रहण करें।

हम शोध भोजनालय प्रभारी हैं तो इसका अर्थ यह नहीं कि हमारे परिचित जो कि बाजार का कुछ भी खाते-पीते हैं, उन्हें भी वहाँ बैठाकर भोजन कराकर हम अपने अधिकार का दुरुपयोग करें।

इस संबंध में हमें विवेक रखते हुए कार्य करना चाहिए। यह हमारे एक सच्चरित्र व्यक्तित्व की निशानी है। हम अपने जीवन को निहारें कि कहीं हममें उक्त दोष तो नहीं हैं, यदि हैं तो हम अन्य किसी से कोई अपेक्षा रखे बिना, उन दोषों का परिमार्जन करें तो हमारा जीवन अवश्य निखरेगा।

OOO

धन पाने का लोभ बहुत है, नहीं धर्म का लोभ हुआ।
परद्रव्यों के आकर्षण से तो, नित नूतन क्षोभ हुआ।।
है अनंत गुण युत निज आतम, परवस्तु का फिर क्या काम ?
मिटा लोभ अरु शुचिता आई, नहीं चाहिए चाम अरु दाम।।

(8)

व्यर्थ का पाप, है अनर्थकारी

> **''हमारे आस-पास बहुत सारे सुविचार हैं, उन्हें अंगीकार कर जीवन में अपनाने में ही सार्थकता छिपी है।''**
>
> **"There are plenty of good thoughts around us, the real meaning of the life is hidden in adopting them in our life."**
>
> **- अज्ञात**

दैनिक जीवन में हम जो भी कार्य - खाना-पीना, नहाना, कपड़े धोना, व्यापार करना, रिश्तेदारी में आना-जाना, परिवार का पालन करना एवं अन्य जो भी गतिविधियाँ होती हैं, उनमें न चाहते हुए भी अनेक दोष/पाप होते रहते हैं और उनका त्याग करना गृहस्थ जीवन में संभव नहीं हो पाता; अतः वे 'अर्थदंड' कहलाते हैं। 'अर्थ' अर्थात् किसी प्रयोजन के कारण किए गए 'दंड' अर्थात् दोष/पाप।

अज्ञानता से हमारे जीवन में ऐसे दोष/पाप भी होते हैं, जिनसे हमारे किसी भी प्रकार के प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती; अर्थात् जिनके करने से हमें न तो शारीरिक लाभ होता है, न आर्थिक लाभ होता है, न मानसिक लाभ होता है फिर भी वह दोष या पाप होते रहते हैं। जब उनका फल मिलता है तब बहुत ही भयंकर होता है; ऐसे दोषों को 'अनर्थदंड' कहा जाता है अर्थात् बिना प्रयोजन/मतलब/ लाभ के किए जाने वाले दोष। यह 'अनर्थदंड' हमारे जीवन को मलिन करते हैं, हम अपने जीवन को निखारने के लिए अनर्थदंड से बचें।

जिनवाणी में अनर्थदंड पाँच प्रकार के कहे गये हैं -

अ. पापोपदेश - हम अपने मित्रों/परिवारवालों के बीच बैठकर उनको इसप्रकार की शिक्षाएँ देते रहते हैं, जिनसे हमारे किसी भी प्रकार के प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती।

जैसे – किसी को भी व्यापार करने, गलत तरीके से पैसा कमाने, पद प्राप्त करने, पद का दुरुपयोग करने, अधिकारों का दुरुपयोग करने की शिक्षा देते हैं।

जिनसे हमें कुछ लेना-देना नहीं है, उन्हें ऐसे व्यापार करने या काम करने का हम उपदेश देते हैं जिसमें बहुत हिंसा होगी, झूठ बोलना होगा, दो नंबर का काम करना होगा यदि वह काम न भी करे तो भी हम यह उपदेश देकर व्यर्थ का पाप कमाते हैं और यदि वह कार्य करे भी तो पैसा वह कमाएगा, पद वह प्राप्त करेगा, नाम वह प्राप्त करेगा परंतु हम व्यर्थ ही पाप का उपदेश देकर पाप का बंध करते हैं।

अपने बेटा-बेटी या नजदीकी संबंधियों के लिए शिक्षा/व्यवसाय/विवाह के बारे में सोचना व कहना हमारे लिए आवश्यक हो सकता है, पर जहाँ हमारा कोई लेना-देना नहीं है, ऐसे लोगों के बीच बैठकर, बस और रेल में चर्चा करते हुए भी जिनसे हमारा थोड़ी ही देर का संपर्क हुआ है, उन्हें भी हम कुछ भी व्यापार करने, शादी करने या डॉक्टर-इंजीनियर बनने, लौकिक उपलब्धियों के लिए देवी-देवताओं को पूजने, मंत्र-तंत्र करने की शिक्षाएँ देने लगते हैं, यह सब व्यर्थ का पाप है, इसका फल हमें ही भोगना होगा यह सोचकर इस पाप से बचना चाहिए।

आ. हिंसा दान – ऐसे पदार्थों को उपहार में देना या किसी की माँगने पर देना, जिन पदार्थों के निर्माण या उपयोग करने में हिंसा होती हो वह हिंसा दान है।

पहले के समय में लोग हथियार /औजार/आग आदि दिया करते थे जिससे हिंसा होती थी आज वह परिस्थिति नहीं है फिर भी ऐसे वस्त्र, शृंगार प्रसाधन सामग्री, औषधियाँ जिनके निर्माण में हिंसा हुई है/जीवों से प्राप्त सामग्री जिनमें डाली गई है, वह हमें न तो स्वयं उपयोग करना चाहिए और न ही किसी को देना चाहिए।

हमें ऐसी सामग्री/ऐसे वस्त्र भी नहीं देना चाहिए जो अधिक रागवर्धक हो। ऐसे कार्यों में सहयोग भी नहीं करना चाहिए जो धर्म से दूर ले जाने वाले हैं; यदि हम ऐसा करते हैं तो हम उस जीव की भाव हिंसा करते हुए हिंसा का दान करते हैं।

उक्त हिंसक सामग्री का दान भी हमारे लिए कोई लाभकारी नहीं है इसलिए अनर्थदंड है। अगर हम अपने लिए किसी सामग्री का उपयोग करते हैं तो कम से कम शरीर के लिए कुछ लाभ तो हुआ, परंतु दूसरों को देने पर तो कुछ लाभ नहीं हो रहा है, मात्र पाप ही होता है, अतः इसका त्याग करना चाहिए।

इ. अपध्यान – कभी परिस्थितियाँ होती हैं, जब हम कमरे में अकेले लेटे हैं, कार्यालय या दुकान पर अकेले बैठे हैं, उस समय हम और कुछ करें या न करें लेकिन हमारा मन बहुत दौड़–भाग करता है और संस्कार ऐसे खोटे पड़े हुए हैं कि हम अच्छे काम न सोचकर किसी का भी बुरा ही सोचते हैं–उनके यहाँ नुकसान हो जाए, उनका लड़का–लड़की क्यों आगे बढ़ रहा है? उनके व्यापार में घाटा होना चाहिए, भाइयों में झगड़ा होना चाहिए, किसी का अपयश होना चाहिए, किसी को पुरस्कार नहीं मिलना चाहिए, किसी के लड़का–लड़की भाग जाए, इस कोरोना रोग में अमुक देश के लोग मर जाएँ यह सब अपध्यान/खोटा ध्यान है, दुश्चिंतन है।

हमारे इस चिंतन से एक पत्ता भी हिलने वाला नहीं है, तब फिर हम क्यों किसी के बारे में बुरा सोचकर अपना बुरा कर रहे हैं? हमने कहावत सुनी होगी कि '**मन में ही लड्डू खाना है तो वह फीके क्यों खाना?**' जब हमें केवल सोचना ही है, जिसमें पानी लगना है, न ही पत्थर–सीमेंट लगना है तो क्यों ना हम अच्छा सोचें। पूरे देश के बारे में अच्छा सोचें, समाज/परिवार के बारे में अच्छा सोचें, हमारा जो शत्रु भी

है उसके बारे भी हम अच्छा ही सोचें। किसी का भी अच्छा या बुरा होना उसके भाग्य के अधीन है, परंतु हम जब किसी का बुरा सोचते हैं, तब उसका कुछ भी बुरा नहीं होता, लेकिन हमारा बुरा अवश्य होता है; क्योंकि हम बुरा सोचकर तत्काल आकुलता भोगते हैं और भविष्य के लिए पाप का बंधन करते हैं।

ई. दुश्रुति – खोटी बातों को सुनना। जो बातें हितकर नहीं हैं, जिन बातों के करने का कोई निष्कर्ष नहीं है, फल नहीं है ऐसी बातें सुनते रहना दुश्रुति कहलाता है – जिनवाणी में उन्हें विकथा कहा है, वह चार प्रकार की हैं –

(i) स्त्री कथा – किसी भी स्त्री/पुरुष के बारे में चर्चाएँ करना। पुरुष बैठे हुए हैं तो वह लड़की/वह महिला बहुत सुंदर है, बहुत बढ़िया है, ऐसी पत्नी होना चाहिए, वह हीरोइन लगती है, स्मार्ट लगती है और यदि महिलाएँ या बालिकाएँ हैं तो इसीप्रकार किसी भी लड़के के बारे में चर्चाएँ करना, उन्हें हीरो कहकर पसंद करना, प्रशंसा करना और फिर उठकर घर चले जाना; इसका लाभ कुछ भी नहीं है, लेकिन यह खोटी बातें सुनना दुश्रुति अनर्थदण्ड है।

(ii) भोजन कथा – हम जो भोजन कर चुके हैं या आगे कब बनेगा उसके बारे में भी बैठे–बैठे बातें किया करते हैं। परसों मिठाई अच्छी थी, उनके घर पर दाल बहुत अच्छी बनी थी, उनकी घर सब्जी बहुत अच्छी थी, कल की सब्जी अच्छी नहीं थी, कल ऐसा बनाना है आदि। इस सबका क्या लाभ है? जो खाया जा चुका है वह तो खत्म हो गया, जो बनेगा वह समय बताएगा, हम व्यर्थ में बैठ करके उस भोजन की बात करके अपने समय का दुरुपयोग करते हैं।

(iii) राज कथा – हम अभी फुर्सत के समय में फोन लगाकर अथवा दो चार लोग कहीं बैठकर प्रधानमंत्री महोदय/मुख्यमंत्री महोदय/

सोनिया गाँधी/राहुल गाँधी/कांग्रेस पार्टी/भारतीय जनता पार्टी/केजरीवाल किसी को भी विषय बनाकर प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, उनकी सरकार गिराने के लिए घंटों चर्चाएँ करते रहते हैं। यह सब व्यर्थ में समय खोना व अपना दिमाग खराब करना है; क्योंकि हमारी इन व्यर्थ की चर्चाओं से किसी की भी सरकार बनती/बिगड़ती नहीं है। बस हमारा समय बिगड़ता है।

(iv) चोर कथा – हम व्यर्थ ही चोरी की भी कथाएँ करते रहते हैं – किस तरह से 'कर' बचाया जा सकता है, किस तरह से मिलावट की जा सकती है, अगर सरकारी कर्मचारी हैं तो कैसे समय के बाद कार्यालय पहुँचा जा सकता है? कैसे वहाँ से जल्दी भाग कर आया जा सकता है? कैसे कामचोरी कर सकते हैं? इसकी कलाओं का आदान-प्रदान हम बातों के माध्यम से करते हैं, जिसका कि सच में हमारे लिए कोई लाभ नहीं है।

इसीप्रकार अन्य खेलकूद/व्यापार/दूसरों की निंदा/अपनी प्रशंसा इत्यादि सुनते रहते हैं और अपने समय अर्थात् अपने जीवन को ही बर्बाद करते हैं।

विचार करना, इन चर्चाओं का सच में हमें क्या लाभ होता है? यदि इसी समय में हम जिनवाणी सुनते, मेरी भावना, आलोचना पाठ, भक्तामर स्तोत्र सुनते तो हमारे कैसे परिणाम होते? और यह चर्चाएँ हम सुनते रहे हैं, हमारे कैसे विचार हो रहे हैं?

(v) प्रमाद चर्या – हमारे जीवन में जो भी अयत्नाचार/असावधानी पूर्वक क्रियाएँ होती हैं, वह प्रमाद चर्या है।

हमारे वे कार्य जो हमें करने आवश्यक हैं जैसे भोजन/स्नान/व्यापार आदि, जिनमें सावधानी रखकर हम बहुत सारे दोष से बच सकते थे, परन्तु प्रमाद से/असावधानीपूर्वक हम बहुत ज्यादा पाप कमाते हैं।

नहाने के लिए हमें पानी की आवश्यकता है, परंतु नल खुला छोड़कर के बातें करने लगना और पानी बहाना यह प्रमाद चर्या है।

हम पानी छानकर के काम में ले सकते हैं लेकिन बिना छना पानी ही गीजर के माध्यम से गर्म कर रहे हैं या उपयोग कर रहे हैं यह प्रमादचर्या है।

घूमने के लिए हम बगीचे में जाकर के घास पर ही चलते हैं, पत्तियों को तोड़ते हैं, डालियों को तोड़ते हैं, फूल को तोड़ते हैं, यह प्रमादचर्या है।

कहीं पर भी बैठे-बैठे हम जमीन खोदते हैं, पत्थर फैंकते हैं इसका कोई औचित्य नहीं है, यह प्रमादचर्या है।

हमें पंखा चलाना गर्मी में आवश्यक हो सकता है, लेकिन पंखा चलाकर दूसरी जगह बैठ जाना अथवा पंखा और आवश्यकता न होने पर भी एसी चलाकर रजाई ओढ़ करके सो जाना यह प्रमादचर्या है।

पढ़ने के लिए एक लाइट जलाना आवश्यक है, लेकिन 4-4 लाइट जला देना यह प्रमादचर्या है।

भोजन बनाने के लिए गैस जलाना आवश्यक है लेकिन गैस जला करके बर्तन खोजने लगना/निकालने लगना यह हमारी प्रमादचर्या है।

हम व्यर्थ में बैठे-बैठे कपड़े फाड़ देते हैं, कपड़े मोड़ते रहते हैं, बालिकाएँ बालों को ऊँगली में फँसा कर घुमाती रहती हैं, किसी से भी व्यर्थ में ही धक्का-मुक्की कर लेते हैं, पुस्तकों को इधर-उधर फैंक देते हैं, सामान धक्का मारकर, कुर्सी-टेबल को खिसका देते हैं, जूते-चप्पल फैंककर उतारते हैं, यह सब प्रमादचर्या है।

कोई भी भजन-गीत आदि सुनते हैं, उसकी बहुत तेज आवाज कर देते हैं। किसी भी प्रसंग में आतिशबाजी करना, धूम-धड़ाका करना, हर किसी जगह पर उछल-कूद करके नाच करना, जिसे कहा जाता है 'बेगानी शादी में अब्दुल्ला दीवाना' यह सब कार्य प्रमादचर्या है।

हमें इनसे बचना चाहिए। हम इस प्रमादचर्या को समझ कर अपने जीवन में पाप कम कर सकते हैं। साथ ही जो ध्वनि–जल–वायु प्रदूषण होता है, उस प्रदूषण को रोकने में सहयोग कर सकते हैं।

8. निर्माल्य के दोष से बचें – मंदिर को किसी भी रूप में दी गई सामग्री निर्माल्य के रूप में कही जाती है, देव सामग्री कहलाती है। मंदिर में चढ़ाई हुई सामग्री अर्थात् चावल–बादाम आदि को यदि हम वेतन के रूप में कर्मचारी को देते हैं तो यह बहुत बड़ा दोष है।

मंदिर को दी गयी दान राशि से यदि हम अपने उपयोग में भवन आदि बनवा कर या भोजन आदि में खर्च करते हैं तो यह बहुत बड़ा दोष है।

मंदिर में हुई आय का उपयोग मंदिर की साज–संभाल व्यवस्था में ही होना चाहिए अथवा ज्ञानप्रचार में उसका उपयोग किया जाना चाहिए, लेकिन सामाजिक कार्यों में, मंदिर के लिए दिए गए दान का उपयोग नहीं होना चाहिए।

जो शैक्षणिक संस्थाएँ हैं, उन संस्थाओं में जो दान आया है, वह ज्ञानदान है। वह बालक/बालिकाओं के अध्ययन के लिए आया है हमें उस राशि का उपयोग उसी में करना चाहिए। यदि उस राशि का उपयोग अधिकारियों की विशिष्ट/अनावश्यक सुविधाओं के लिए किया जाता है, यदि बालक–बालिकाएँ उन सुविधाओं का उपयोग करके ढंग से अध्ययन नहीं करते हैं, उस सार्वजनिक संपत्ति का दुरुपयोग करते हैं वहाँ के बिजली/पानी/बिस्तर/कुर्सी/टेबल आदि जो भी सामग्री है, वह सब हमें शिक्षण कार्य के लिए दी गई है तो चाहे अधिकारी हो/कर्मचारी हो या बालक–बालिकाएँ हों; यदि उनका सदुपयोग न करके दुरुपयोग करते हैं तो वह निर्माल्य का दोष कहलाएगा, जिसे जिनवाणी में बहुत बड़ा पाप कहा गया है।

हमारे द्वारा जो दान राशि घोषित की गई हो वह अतिशीघ्र मंदिर या

संस्था में जमा कराएँ। यदि हम राशि घोषित करके (यदि समय सीमा पहले से ही निश्चित है, तब अलग बात है) भी महीनों या वर्षों तक जान-बूझकर नहीं देते हैं तो हमें निर्माल्य के उपयोग करने का दोष लगेगा।

ऐसे कार्य करनेवाले को समाज के लोग भी अच्छी दृष्टि से नहीं देखते। ऐसे लोगों को लोग सुविधाभोगी कहते हैं, स्वार्थी कहते हैं/अपने लाभ के लिए धर्म आदि का दुरुपयोग कर रहे हैं/नाम के लिए दान देते हैं, ऐसा कहते हैं। इससे हमारा व्यक्तित्व निखरता नहीं है, निरपेक्ष व निस्वार्थ होता नहीं है, अपयश ही फैलता है।

हम ऐसे निर्माल्य के दोष से बचें अन्यथा भविष्य में भव-भव तक हमारे लिए दीन-हीन बन करके रहना पड़ेगा, हमें उचित संसाधन प्राप्त नहीं होंगे।

मित्रो! यदि हम अपने जीवन/व्यक्तित्व को निखारना चाहते हैं, सुंदर/व्यवस्थित बनाना चाहते हैं, अपने कार्यों से समाज में सम्मान पाना चाहते हैं, पापों से बचना चाहते हैं एवं धर्ममार्ग में लगना चाहते हैं तो हम अपने जीवन का 'जनवाणी के अनुसार नहीं, जिनवाणी के अनुसार' निर्माण करें। क्या कहेंगे लोग? इस रोग से बचें।

हमने स्वयं ही अपने जीवन/व्यक्तित्व को मलिन किया हुआ है, विकास के मार्ग को रोक रखा है और हम ही अपने जीवन को परिमार्जित करके निखार सकते हैं, व्यक्तित्व का विकास कर सकते हैं। वास्तविक और सच्चा व्यक्तित्व तो सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र है, जिसका पूर्ण विकास हो जाने पर मोक्षरूपी फल प्राप्त होता है। यहाँ तो जो हमने चर्चा की है, वह एक सामान्य सामाजिक व्यक्तित्व के विकास के लिए की है। अंत में बस यही कहना चाहूँगा कि हम अपना 'जीवन निहारें और जीवन निखारें।' OOO

चलने से ही मंजिल मिलती

चलने से ही मंजिल मिलती, करने से ही होते काम।
रहता है गतिमान सदा जो, उसका ही होता है नाम।।

कछुआ चलता धीरे-धीरे, पर मंजिल पा जाता है।
सोता है खरगोश इसलिए, वह पीछे रह जाता है।।

घड़ी सदा ही चलती रहती, अतः कलाई पर बंधती।
गाड़ी चलती रहकर ही तो, जग की सैर सदा करती।।

नन्ही-सी चींटी भी चलकर, दीवारें चढ़ जाती है।
हिमगिरी से चलकर के गंगा, सिंधु तक बह जाती है।।

गिरिराज अकड़ कर खड़ा रहा, ना एक कदम बढ़ पाया है।
और सरोवर में पानी बंधकर, पड़ा, सड़ा पछताया है।।

अतः मित्र तुम चलो निरंतर, पद चाल भले ही धीरे हो।
पड़े रहे तो पत्थर हो, चल पड़े तुम्ही तो 'हीरे' हो।।

अय चेतन अब तुम जागो! सोते रहे अनादि से।
निजानंद का स्वाद लिया ना, क्यों तुम बने प्रमादी से।।

अपनी मति को अब गति दो तुम, पर से हटकर निज में आओ।
पर-पर्यय का मोह तजो और, निज चेतन की ही रुचि लाओ।।

मोह नींद में पड़े हुए हो, तुम अनादि मिथ्यातम में।
यदि चलना प्रारंभ किया तो, क्षण में होगे 'शिव-मग' में।।

चलने से ही पंचम-सप्तम, गुणथान तेरवाँ भी होगा।
चौदहवें को पार करोगे, सुखमय अनंत शिव पद होगा।।

पर से हटना निज में रमना, ही तो बस बंधु! 'चलना' है।
'ज्ञाता' रहना कुछ ना करना, यही मात्र बस 'करना' है।।

संकल्प

जिसने जन्म लिया दुनिया में, उसको एक दिन मरना है।
मरने से पहले पर सोचो! बंधु! कुछ तो करना है।।

वृक्ष मधुर फल, शीतल छाया, देकर करता है उपकार।
रवि प्रकाश दे तम हरता है, नहीं चाहता कुछ सहकार।।
चंद्र चंद्रिका शुभ्र बिछाकर, करता शीतलता का दान।
सरिता जल दे, पुष्प सुरभि दे कभी नहीं करते हैं मान।।
जग हितकर यह कार्य सदा हों, नहीं प्रदूषण करना है।।1।।

मात-पिता ने लालन-पालन, कर कीना है बहु उपकार।
दादा-दादी नाना-नानी, सबने खूब लुटाया प्यार।।
अपनी उन्नति में समाज अरु संस्थाओं का भी सहयोग।
शिक्षा-औषधि और सुरक्षा, में शासन का विनियोग।।
चुका सकें उपकार सभी का, इनकी सेवा करना है।।2।।

सत्साहित्य सृजन कर मुनिजन, सत्य पंथ है बतलाया।
मधुर सुभाषित वचनामृत दे, गुरुजन ने वह समझाया।।
मोह विनाशक, ज्ञान प्रकाशक, ज्ञान का दीप जलाया है।
तन-मन-धन, स्नेह दान कर, यह प्रकाश फैलाया है।।
हो निरपेक्ष भाव ही मन में, सत्यपंथ पर चलना है।।3।।

दुर्लभ नर भव में हे बंधु! करो प्रकृति का संरक्षण।
प्रकृति सुरक्षित रही यदि तो, होगा अपना ही रक्षण।।
परिजन-पुरजन अरु समाज का, मानो जो है अनुशासन।
कर्तव्यों का पालन करना, कहता जो भारत शासन।।
धर्म की चर्चा हर घर में हो, ज्ञान प्रचार ही करना है।।4।।

समर्पण द्वारा प्रकाशित साहित्य

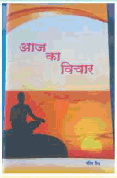

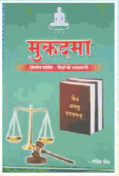

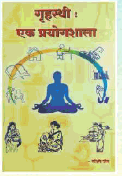

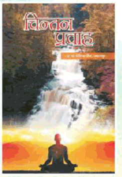

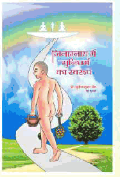
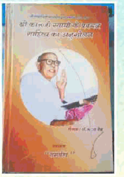

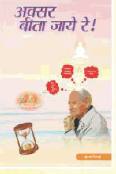

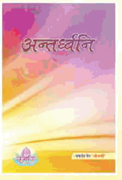

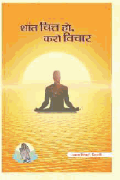

समर्पण का मासिक प्रकाशन संस्कार सुधा

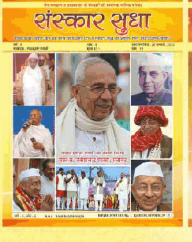

'समर्पण-संकल्प'

(तर्ज - रोम-रोम से निकले प्रभुवर नाम तुम्हारा)

करें समर्पण जिनशासन सेवा में तन-मन सारा - सेवा में तन - मन सारा ।
देव-धर्म-गुरु की प्रभावना है संकल्प हमारा ॥

आगम शिविर लगायें, तत्त्वज्ञान करायें ।
संस्कार के पुष्प खिलें जो, अंतर को महकायें।
महावीर शासन की जय से, गूँज उठे जग सारा ॥1

सत्साहित्य प्रकाशें, जन-जन में पहुँचायें ।
आत्म-साधना सभी करें अर, 'सुखायतन' में आयें ॥
सहज प्रवाह बने जीवन ये, चाहे छूटे जग सारा ॥2

- अजित शास्त्री, अलवर